[illegible]

प्रस्तुत पुस्तक [illegible] के [illegible] प्रमुख [illegible] है। [illegible] के [illegible] है। [illegible]

[illegible]

# मीर साहब की ईद

# मीर साहब की ईद

[ हास्य-प्रधान नाटकों का संग्रह ]


लेखक

शौकत थानवी

अनुवादक

नूरनबी अब्बासी



प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली।

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज,
दरीबा कलां, दिल्ली।


प्रथम संस्करण
सन् १९५८

मूल्य : तीन रुपये पच्चीस नये पैसे

मुद्रक
नूतन प्रेस,
चांदनी चौक, दिल्ली।

MIR SAHIB KI I'D : NOOR NABI ABBASI : Rs. 3·25

# अनुक्रम

शौकत थानवी के ये हल्के-फुल्के हास्य-प्रधान एकांकी पठनीय भी हैं और श्रवणीय भी। इन्हें मंचस्थ भी किया जा सकता है और इनकी विशेषता यह है कि प्रत्येक नाटक में एक ही सेट है। चूँकि ये रेडियो पर प्रसारणार्थ रचे गये थे इसलिए सेट का ब्यौरा नहीं दिया है जिसे मंचस्थ प्रेमी अपनी सुविधानुसार तथा नाटक की भावना को देखते हुए स्वयं चुन सकते हैं।

इस संग्रह के प्रत्येक एकांकी में शौकत शानवियत दृष्टिगोचर होती है। इसकी स्थितियाँ और सम्वाद इतना हँसाते हैं कि पेट में बल पड़ जाते हैं। चूँकि पात्र तथा स्थिति के अनुसार सम्वाद लिखे गये हैं उनका शब्दशः अथवा स्वतंत्र अनुवाद उचित न था। अतएव सम्वादों की भाषा उर्दू रखकर लिप्यन्तर कर दिया गया है तथा गूढ़ शब्दों के यथा स्थान अर्थ दे दिये गये हैं।

—प्रकाशक



[घण्टी बजती है। नवाब साहब नौकर से कहते हैं।]

नवाब—देखो बाहर कौन है ?

[दरवाजा खुलने की आवाज, नौकर जाता है।]

आगन्तुक—क्यों भई, नवाब साहब बहादुर तशरीफ रखते हैं ?

नौकर—तो क्या हुजूर ताँगे पर आ गये ? नवाब साहब ने तो मोटर भेजा था। वह आप ही का इन्तेजार कर रहे थे……।

आगन्तुक—[आश्चर्य से] मोटर भेजा था ? मेरा इन्तेजार कर रहे थे ?

नौकर—जी हां। अभी तो गया है मोटर। मैं सरकार को इत्तला तो कर दूँ कि हुजूर आ गये। [दौड़ता हुआ दरवाजा खोलकर जाता है और आगन्तुक कुछ शांति के बाद अपने आप से कहता है।]

आगन्तुक—मोटर ? इन्तजार ? नौकरी के उम्मीदवारों के लिए मोटर ?

[नवाब साहब आते हैं।]

नवाब साहब—जीते रहो, जीते रहो। हाथ क्या मिला रहे हो, इधर आओ। तुमको गले से तो लगाऊं। [गले लगाकर पीठ पर थपकियाँ देते हैं।] भई, क्या गधा है यह ड्राइवर भी। यानी तुमको ताँगे पर आना पड़ा। खैर, खैर तो आओ।

आगन्तुक—तो हुजूर को मेरा तार वक्त पर मिल गया था ?

नवाब साहब—हां भई, तार मिल गया था, मगर मुझे जरा नजले की शिकायत थी। खैर, खैर तो मतलब यह है कि खैरियत तो है ? भई, बहुत तबियत खुश हुई तुमको देखकर। [आवाज देकर] अरे कोई है ?

नौकर—सरकार !

नवाब साहब—भई, इनका सामान मेरे कमरे में रखवाओ। जिस

तरह से ये कहें सामान दुरुस्त कर दो। [आगन्तुक से] मियाँ यह तुम्हारा ही घर···यानी···यानी ख़ाना-ए-बेतकल्लुफ़ है। तो मेरा मतलब यह कि तुम सामान रखवा दो अपनी निगरानी में। जब तक मैं घर में तो इत्तला कर दूँ तुम्हारे आने की।

आगन्तुक—जो राय हो हुज़ूर की।

नवाब साहब—मियाँ, यह हुज़ूर-वुज़ूर का तकल्लुफ़ भी छोड़ो। तुम मेरे बच्चे हो। बड़ी खुशी हुई तुमको देखकर। तो मतलब यह कि अब जाकर पहले अपना सामान दुरुस्त करा दो। [नवाब साहब उधर और यह इधर जाते हैं।]

आगन्तुक—भई जमादार साहब, तुम्हारा नाम क्या है ?

नौकर—अल्लाह सलामत रखे इस ग़ुलाम को, जुम्मन ख़ाँ कहते हैं। तो सरकार मैंने यह रख दिया है सब सामान। बिस्तर नहीं खोला है, नवाब साहब की मसहरी तो मौजूद है ही।

आगन्तुक—भई, नवाब साहब की मसहरी पर तो······।

नौकर—जी हाँ, नवाब साहब की मसहरी पर सब चीज़ें हैं। और हुज़ूर लोटा ग़ुसलख़ाने में रख दिया है। बक्स यह रहा और सरकार यह झाबा कहिए तो कहीं बाहर रखवा दूँ ?

आगन्तुक—हाँ, हाँ···इसे बाहर···मैं ख़ुद रखे देता हूँ।

नौकर—नहीं, नहीं, हुज़ूर भला कोई बात भी हो। यह ग़ुलाम आख़िर काहे के लिए है ?

आगन्तुक—भई, सख़्त तकलीफ़ हुई तुमको मेरे आने की वजह से। और भई नवाब साहब······।

[नवाब साहब आवाज़ देते हैं।]

नवाब साहब—अरे कोई है ?

नौकर—सरकार···। [दौड़ता है।]

नवाब साहब—सब सामान रखवा दिया ? इन्तज़ाम ठीक है ना ?

देखो किसी बात की तकलीफ़ न हो। [आवाज़ देकर] भई, चाय तैयार है, अब नाश्ता करके इत्मेनान से आराम करना।

आगन्तुक—[कमरे से बाहर आकर] जी हाँ, मैं तैयार हूँ।

नवाब साहब—भई, वह हुआ यह कि मैंने जो तुम्हारी इत्तला की तो वह कहने लगीं कि नाश्ता घर में ही होगा। [हँसते हैं।] तो मतलब यह कि तुमको असल में सब लोग देखना चाहते हैं [हँसते हैं।] मियाँ, यह औरतों का भी अजब कारख़ाना होता है। और···और···अच्छा तो आओ ना। देखो, टोपी ठीक कर लो। [हँसते हैं।] भई, मुआयने का क़िस्सा है ना। [हँसते हैं, और जाते हैं।] आओ भई आओ।

नौकर—हुजूर, पर्दा हो गया।

नवाब साहब—तो ठीक है, आओ भई आओ। [घर के अन्दर जाते हैं।] अच्छा, यह बात है। [हँसते हैं।] देखो भई, ये सब चिलमन के पीछे तुम्हें देखने को जमा हैं और चाय पिलाने का महज़ बहाना है। तो बैठो, ना, ना, ना। इस कुर्सी पर ताकि चिलमन की तरफ मुँह रहे तुम्हारा। [हँसते हैं।] तो भई शुरू करो ना। [चाय के बर्तनों की आवाज, चिलमन के पीछे से आहिस्ता आवाजें]

एक आवाज—अय, हय शर्मीला है।

दूसरी आवाज़—नसीबन तो कहती थी काले हैं। न काले हैं ऐसे······।

आवाज नं० १—ऐ, ऐनक तो देखो, कैसी मोटी-सी है। [दरम्यान के बर्तनों की आवाज]

नवाब साहब—अरे भई यह लो। क्या है यह, न जाने क्या बला है। समोसा है शायद। और यह···यह···;···मतलब यह खाओ ना कुछ।

आगन्तुक—जी हाँ खा रहा हूँ।

आवाज नं० १—न खा रहे हैं, ठूँग रहे हैं दुल्हनों की तरह।

आवाज नं० २—बहन, लड़का नेक मालूम होता है।

आवाज नं० १—सूरत पर भोलापन भी है।

नवाब साहब—[चाय का घूंट लेकर] तो रात को चले होगे तुम।

[बीच में बर्तनों की आवाज]

आगन्तुक—जी हाँ, सुबह पहुँचा हूँ यहाँ।

नवाब साहब—वहाँ बारिश का क्या हाल है ?

आगन्तुक—कभी-कभी जब बादल घिर आते हैं तो हो जाती है। अब तो तीन-चार दिन से बिल्कुल नहीं है।

नवाब साहब—अच्छा यह लो। शायद यह पिस्ते का हल्वा है या कोई नमकीन चीज़ होगी। तो तुमने तालीम क्यों छोड़ दी ?

आगन्तुक—इम्तेहान में पास होने के बाद फिर मैंने सोचा कि अब कुछ और किया जाय।

नवाब साहब—ठीक है, ठीक है। ज्यादा पढ़ने से भी सेहत खराब होती है। यह उम्र और यह ऐनक तौबा, तौबा ! मैं तो अब तक चाँद की रोशनी में किताब पढ़ सकता हूँ।

आगन्तुक—जी हाँ।

आवाज नं० १—बस बातों में लगाये हुए हैं ग़रीब को। न कुछ खिलाते हैं न पिलाते हैं।

आवाज नं० २—वह ख़ुद ही छुई-मुई बने हुए हैं। जरा देखो तो दाल-मोठ का एक सेव उठाया है।

आवाज नं० १—क्या बुरी लगती हैं ये मुँडी हुई मूँछें भी !

आवाज नं० दो—अच्छा-खासा मुँह तबाक़-सा होकर रह गया है।

[बीच में बर्तनों की आवाज ]

नवाब साहब—भई, मेरी तबियत तो तुमसे मिलकर बहुत ख़ुश हुई। जो तारीफ़ सुनी थी उससे बहुत ज्यादा बेहतर पाया। यानी हाथ क्यों रोक लिया। यह लो, यह केक ताजा है।

आगन्तुक—आदाब अर्ज़।

आवाज नं० १—जैसी दुबली-पतली नन्हीं वैसे ही सींक-सलाई यह।

आवाज नं० २—बहन जोड़ा तो अच्छा है, खुदा मुबारक करे।

आवाज नं० १—फिर यह कि रियासत का ग़रूर नहीं।

आवाज नं० २—मगर बहन इतने दुबले हैं कि डर ही मालूम होता है।

आवाज नं० १—ऐ उसकी काठी ही ऐसी होगी। [बीच में बर्तनों की आवाज]

नवाब साहब—तो आपके वालिद ने आपके अलावा कितनी औलादें और छोड़ी हैं? मेरा मतलब यह कि आपके कितने भाई-बहन हैं?

आगन्तुक—एक भाई मुझसे छोटा, एक बहन मुझसे बड़ी और चार बहनें मुझसे छोटी।

नवाब साहब—ओहो! माशाअल्लाह! माशाअल्लाह!

आगन्तुक—जी नहीं। उन सबका तो इन्तेक़ाल हो चुका है। अब''अब यानी सिर्फ़ मैं बाक़ी हूँ।

नवाब साहब—चच, चच! बड़ा अफ़सोस हुआ। तो ये सबका इन्तेक़ाल कैसे हुआ?

आगन्तुक—सब बीमार हो-होकर मरे; कुछ बचपन ही में मर गये, एक भाई एक बहन जवान होकर मरे।

नवाब साहब—हूँ, तो उन दोनों का किस मर्ज़ में इन्तेक़ाल हुआ?

आगन्तुक—एक को दिक़ हो गई थी, यानी भाई को और बहन को बुखार रहने लगा था। फिर खाँसी शुरू हो गई। उसके''बस इन्तेक़ाल हो गया।

नवाब साहब—तो गोया उनको दिक़ नहीं हुई। और वालिद साहब ने किस मर्ज़ में दाइए-अजल (मृत्यु के देवता) को लब्बैक (स्वागत) कहा?

आगन्तुक—जी ?

नवाब साहब—यानी आपके वालिद साहब मुकर्रमो-मुअज्जम (आदरणीय) का किस मर्ज़ में इन्तेक़ाले-पुरमलाल हुआ ?

आगन्तुक—जी, उनको मुँह से ख़ून आता था और हरारत हो जाती थी।

नवाब साहब—हूँ, हूँ···। अच्छा, तो भई खाओ न कुछ और।

आवाज नं० १—खानदान भर को दिक़ हुई।

आवाज नं० २—बहन, यह तो बुरी बात है।

आवाज़ नं० १—बात तो शक की ज़रूर है मगर······।

आवाज नं २—अगर-मगर क्या ? खान्दान भर को बड़ी बीमारी हुई।

आवाज नं० १—वैसे लड़का अच्छा-ख़ासा है।

आवाज नं० २—ना बहन इस घराने······।

नवाब साहब—भई, तुम अपनी सेहत का ख़याल ज्यादा रखा करो। तुम ख़ुद तो अच्छे रहते हो ?

आगन्तुक—जी मैं ? मैं तो बिल्कुल अच्छा रहता हूँ।

नवाब साहब—कभी हरारत-वरारत तो या खाँसी-वाँसी मतलब यह है कि इस क़िस्म की कोई शिकायत तो नहीं हुई ?

आगन्तुक—जी हाँ, यानी जी नहीं, ये बीमारियाँ तो कभी नहीं रहीं। अलवत्ता, अलबत्ता मेदा खराब हो जाता है। यानी नजला-वजला हो जाता है कभी-कभी!

नवाब साहब—ख़ैर, ख़ैर······।

आवाज नं० १—बहन, मेरे दिल में तो चोर बैठ गया है।

आवाज नं० २—क्या बताऊँ, लड़कों का तो काल है। कहाँ तक लड़की को बिठाये रखा जाये ?

आवाज नं० १—ऐ तो ऐसी भारी भी नहीं कि यूँ जान-बूझ के झोंक दी जाये।

आवाज नं० २—वैसे तो यह लड़का हर तरह अच्छा है; खान्दानी है, अपने से कम भी नहीं। फिर सीधा मालूम होता है।

[नौकर आता है।]

नौकर—हुजूर, एक साहब मय असबाब के ताँगे पर आये हैं।

नवाब साहब—ताँगे पर आये है? ओह, यह होंगे जिनका दूसरा तार था।

नौकर—जी हाँ, गोरे-गोरे कुछ तगड़े-से हैं। इन हुजूर की उमर है।

नवाब साहब—ठीक है, ठीक है, मैं समझ गया। उनको प्रायवेट सेक्रेटरी का कमरा खोलकर ठहराओ और कह दो कि मैं दोपहर को मिलूँगा उनसे।

[नौकर जाता है।]

नवाब साहब—[आवाज देकर] देखो, खाने-वाने का खयाल रखना। [आगन्तुक से] तो मैं यह कह रहा था कि मियाँ सेहत से ज्यादा मुक़द्दम कोई चीज नहीं। तुम शायद वर्जिश नहीं करते।

आगन्तुक—जी वर्जिश? वर्जिश तो नहीं करता।

नवाब साहब—हां तो करना चाहिये तुमको। मुझको देखो इस उम्र में तुमसे ज्यादा तेज दौड़ सकता हूँ। और यही वजह है कि नजला तो खैर हो जाता है मगर......मगर मेदा कभी खराब नहीं होता। खूब खाओ और वर्जिश करो। तुम्हारा खास शग़ल क्या है।

आगन्तुक—हुजूर, अब तो जब से बेकार हूँ ज्यादातर कुतुब-बीनी (पठन-कार्य) का मशग़ला रहता है?

नवाब साहब—मैंने यह मशग़ला कभी नहीं रखा। इससे आँखों को नुक़सान पहुँचता है। वालिद साहब को बहुत शौक़ था कुतुबबीनी का। अब उनके कुतुबखाने को मैंने वर्जिश-घर बना रखा है। मैं दिखाऊँगा तुम्हें।

आगन्तुक—दुरुस्त है।

नवाब साहब—दुरुस्त नहीं, बल्कि यही होना चाहिए'''। तो खैर '''मतलब यह कि और कुछ शिकार-विकार से शौक़ है या वो भी नहीं ?

आगन्तुक—जी ? जीहाँ। एकाध मरतबा शिकार देखने तो गया हूँ मगर खेला कभी नहीं।

नवाब साहब—हैरत है, यही सख्त हैरत है। यानी शिकार से तो हमारे तब्क़े को खास ताल्लुक़ है। दूसरे यह एक आला क़िस्म की वर्जिश भी है। आखिर शिकार से दिलचस्पी क्यों नहीं है ?

आगन्तुक—वह बात यह है''''''वह बात यह है कि पहले तालीम की मसरूफ़ियत (शिक्षा की व्यस्तता) ने मुहलत न दी, फिर''''''।

नवाब साहब—फिर बस पढ़ने-लिखने के रह गये। तो खैर, मगर भई इन चीजों को बिल्कुल तो नहीं छोड़ना चाहिए।

एक आवाज—एक बात भी तो रईसजादों की-सी नहीं है।

दूसरी आवाज—इतना बड़ा रईस और ज़रा भी तमकनत (अभिमान) नहीं।

आवाज नं० १—रियासत छू भी नहीं गई है ; बस यही एक गधा पड़ गया है।

आगन्तुक—तो हुजूर से डिप्टी साहब ने मेरे लिए कहा होगा।

नवाब साहब—डिप्टी साहब ? कौन डिप्टी साहब ? भई तुम्हारे मुतल्लिक़ तो कुँवर साहब से बहुत कुछ सुना था, और जैसा सुना था वैसा ही पाया।

आगन्तुक—मैं चाहता था कि उस सिलसिले में कुछ बात हो जाती।

नवाब साहब—मियाँ, बात ही क्या होना है ? और होना है सो

होती रहेगी, अभी तो ठहरो यहाँ। ज़रा इस देहात की हवा खाओ। भई यह तुम्हारा ही घर है।

आगन्तुक—यह तो दुरुस्त है हुज़ूर, मगर मैं चाहता था कि कोई ग़लतफ़हमी पैदा न हो।

नवाब साहब—लाहौल वला क़ूवत। भई तुमने यह ग़लतफ़हमी की भी एक ही कही। एक मरतबा मुझको ग़लतफ़हमी हुई है कि नवाब साहब चौपड़ मुझसे मिलने आ रहे थे। मैं उनके इन्तेज़ार में था कि एक इन्शोरंस कम्पनी का ऐजण्ट कहीं से आ निकला। मैं क्या जानूँ, मैं समझा कि यही हैं नवाब साहब। भई हर तरह की खातिर-मदारात (आव-भगत) की और वो अल्लाह का बन्दा भी चुप कि इतने में नवाब साहब तशरीफ़ ले आये। क्या कहूँ कि उस कमबख़्त एजण्ट पर कितना ग़ुस्सा आया है। अगर वह नौ-दो ग्यारह न हो जाये तो मैं बाद में उसकी और अपनी जान एक कर दूँ।

आगन्तुक—जी तो मेरा······मेरा मक़्सद यह है कि उसी क़िस्म की ग़लतफ़हमी।

नवाब साहब—[क़हक़हा लगाते हुए] खैर, खैर। इस क़िस्म की ग़लतफ़हमी की भी एक ही रही। मियाँ वह ऐजण्ट तो था समझदार फ़ौरन रफ़ू चक्कर हो गया।

आगन्तुक—इसीलिए तो मैं चाहता था कि अपने मुताल्लिक़ सब कुछ सफाई से अर्ज़ कर दूँ।

नवाब साहब—ओ फ़्फ़ो! भई आख़िर ऐसा कौनसा तूफ़ान आ रहा है? क्या जल्दी है आख़िर?

आगन्तुक—यह तो सही है मगर मैं चाहता था कि फ़ैसला हो जाता और बात भी साफ़ हो जाती। मेरे दिल में कुछ······।

नवाब साहब—[बात काट कर] खैर, खैर। तुम्हारे दिल में कुछ न होना चाहिए और यह बात तो तुम जानते हो कि और औरतों के मश-

विरे के हो ही नहीं सकती। अब तुम आये हो, कुछ दिन ठहरो। फिर इत्मेनान से होती रहेगी बात भी।

आगन्तुक—मगर ग़लतफ़हमी······।

नवाब साहब—तौबा है। मियाँ ग़लतफ़हमी गई जहन्नुम में। तुम चलो बाहर और अब आराम करो। थोड़ी देर में एक घण्टे में मैं बाहर आता हूँ। [आवाज़ देकर] अरे कोई है?

नौकर सरकार।

नवाब साहब—देखो, मियाँ को ले जाओ और वहीं मौजूद रहो। मैं थोड़ी देर में आता हूँ।

आगन्तुक—आदाब अर्ज़।

नवाब साहब—जीते रहो, जीते रहो।

[आगन्तुक नौकर के साथ जाता है। बाहर कमरे में पहुँचकर।]

नौकर—अल्लाह सलामत रखे हुज़ूर को। नवाब साहब ने बहुत पसन्द किया है अब बड़ी सरकार की मर्ज़ी बाकी है।

आगन्तुक—भई जुम्मनखाँ, मेरे ख़याल में यहाँ कुछ धोखा हो रहा है।

नौकर—नहीं हुज़ूर, अल्लाह जानता है बड़ा अच्छा घराना है। और सब बड़े अच्छे लोग हैं।

आगन्तुक—अच्छा यह बताओ कि पहला प्रायवेट सेक्रेटरी क्यों निकाला गया था?

नौकर—हुज़ूर, वह था ही इस क़ाबिल। एक दिन मुझसे तू-तकार हो गई थी। मैंने भी बच्चे के वह हाथ मारे होंगे कि छठी का दूध तो याद आ ही गया होगा।

आगन्तुक—यानी तुमने मारा प्रायवेट सेक्रेटरी को?

नौकर—भला हुज़ूर, मैं ख़ान्दानी नमक-ख़्वार इस ड्योढ़ी का, वो आया वहाँ से मुझ पर रौब जमाने। मैंने भी मरम्मत कर दी और

नवाब साहब से जो उसने शिकायत की तो वह दौड़े मोरछल लेके उसी के पीछे।

आगन्तुक—तो भई मैं बाज़ आया यहाँ रहने से।

नौकर—भला हुज़ूर की और उसकी बराबरी? अल्लाह ने चाहा मालिक होंगे आप सारी रियासत के। नवाब साहब के अल्लाह रखे सिवाय साहबजादी के और है ही कौन?

आगन्तुक—साहबज़ादी? क्या मतलब?

नौकर—जी हाँ, बस वही साहबजादी है जिनसे सरकार की बात ठहर रही है।

आगन्तुक—मेरी बात? भई वाक़ई ग़लतफ़हमी हो रही है। अरे भाई मैं तो नौकरी के लिए आया हूँ प्रायवेट सेक्रेटरी की जगह पर।

नौकर—ऐं?

आगन्तुक—भाई जुम्मनख़ाँ ख़ुदा के लिए नवाब साहब के बाहर तशरीफ़ लाने से पहले मुझको यहाँ से रवाना कर दो।

नौकर—यह क्या हुआ? और वह जो अब आये है?

आगन्तुक—भई, वही होंगे नवाब साहब के दामाद और मैं तो अब प्रायवेट सेक्रेटरी भी नहीं रहना चाहता। ज़रा भई यह बिस्तर-विस्तर पकड़वालो।

नौकर—अम्मा, ठहरो तो। चले वहाँ से बिस्तर-विस्तर पकड़वा लो। नवाब साहब से तो मैं कह दूँ। बड़ा ग़ज़ब किया यार तुमने।

आगन्तुक—भैया, मैंने कुछ ग़ज़ब नहीं किया। लो ज़रा हाथ लगा दो इस बक्स में, मैं लिये जाता हूँ।

नौकर—नवाब साहब से कह के जाओ ना। अब क्या मुझको बातें सुनवाओगे?

आगन्तुक—नही भाई, मेरी जान बख्श दो। मै अब नवाब साहब का सामना न करूंगा। [बक्स उठाकर जाने लगता है।]

नौकर—ठहरो मै नवाब साहब से कहतो दूँ।

[नौकर उधर जाता है।]

आगन्तुक—नही, जरा देर और ठहर जाओ मै कोठी से निकल जाऊँ।

[तेज़ क़दमों से जाता है।]

# काया पलट

[रात का दृश्य। कुत्तों के भौंकने की कभी-कभी आवाज ; कभी-कभी पहरेदार का नारा 'जागते रहो' ; घड़ी की टिक-टिक। हल्के खर्राटे के बाद एक मर्द की आवाज।]

पुरुष---क्या मतलब ? यानी अब मैं घर की चहारदीवारी में बैठूँ ? बच्चों की निगरानी करूँ ? सीना-पिरोना देखूँ ?

स्त्री---क्यों आख़िर इसमें ताज्जुब की क्या बात है ? इस काया-पलट से पहले भी सब कुछ औरतों ने किया। घरों की चहारदीवारी में रही हैं ; बच्चों की हमेशा निगरानी की है ; सीना-पिरोना देखा है। क्या अब भी तमाम फ़राइज मर्दों के न होंगे ?

पुरुष---और दफ़्तर का क्या होगा ? तुमको मालूम है आज मुआयना होने वाला है।

स्त्री---आहिस्ता बोलो, बाहर तमाम ग़ैर औरतें बैठी हैं। दफ़्तर मैं जा रही हूँ। मुआयने के लिए अब बजाय साहब के मेम साहब आयेंगी और जिस तरह दफ़्तर में पहले कोई औरत दिखाई न देती थी वैसे ही आज कोई मर्द नजर न आयेगा। अच्छा देखो तुम मेरा दुपट्टा चुनकर रखना, मैं दफ़्तर से आकर जरा पिक्चर में जाऊँगी।

पुरुष---यह तो अजीब मुसीबत है। मैं भला दुपट्टा क्योंकर चुनूँगा ?

स्त्री---जरा सा दुपट्टा चुनना नहीं आता ? ये ढंग हैं तो चला चुके तुम घर। मैंने हमेशा तमाम मर्दाने कपड़ों पर इस्तरी की है। याद करो वह जमाना। मैं यह कुछ नहीं जानती कि दुपट्टा चुनना आता है या नहीं। मुझको दफ़्तर से वापसी पर दुपट्टा चुना-चुनाया मिले। अच्छा मैं ग़ुसलख़ाने जा रही हूँ तुम मेरी कंघी-चोटी का सामान ठीक से रखवाओ, दफ़्तर को देर न हो जाय।

[जाती है।]

पुरुष---[आवाज देकर] आया ! आया ! आया ! आया !

ब्वाय—[दूर से] आता हूँ सरकार। [समीप आकर] हुजूर आया को मेमसाहब ने हुक्म दिया है कि वह बाहर ही रहे। घर में उसका कोई काम नहीं।

पुरुष—अच्छा खैर। देखो मेम साहब की सिंगार-मेज ठीक कर दो। दफ़्तर जा रही है, देर न होने पाये।

ब्वाय—[ताज्जुब से] दफ़्तर जा रही है? और सरकार न जायेंगे दफ़्तर?

पुरुष—नहीं, आज से मेम साहब ही जाया करेंगी। तुम जाओ सिंगार-मेज़ ठीक करो और देखो सब चीजें ठीक से रख देना पावडर, लिपस्टिक, नेल पालिश कोई चीज़ भूल न जाना।

[मेम साहब आती हैं।]

मेम साहब—ओहो दस बजने में दस मिनट रह गये। किधर गया ब्वाय? जब तक तुम ही उठकर जल्दी से मेरा जूड़ा बाँध दो। मैं जब तक क्रीम लगा लूँ। ब्वाय चलो उधर वह आसमानी रंग की बनारसी साड़ी निकालो जो यह नुमायश से लाये थे। चलो, जल्दी करो।

पुरुष—अब वापसी कब तक होगी?

स्त्री—मेरे बाहर जाने के वक़्त इस क़िस्म के मोहमल सवाल मत किया करो। मैं इन बातों को पसन्द नहीं करती। छोड़ो, तुमसे ज़रा-सा जूड़ा तक न बँध सका। अच्छा मेरा पानदान ठीक करके मोटर पर रखवाओ। बहुत देर हो गई है।

पुरुष—अब इस पाउडर वग़ैरा में और भी देर होगी।

स्त्री—बावजूद देर हो जाने के तुम कभी बग़ैर शेव किये बाहर नहीं निकले। लाओ वह क्लिप लाओ और वह ब्रश उठाओ। यह नहीं, वह। किस क़दर बेवक़ूफ़ होते हैं ये मर्द भी। ब्वाय, चलो आईना दिखाओ।

ब्वाय—सरकार, यह साड़ी कही थी आपने?

स्त्री—हाँ, ठीक है, उठाओ, आईना उठाओ। हाँ यों, बस ठीक है। मैंने कहा सुनते हो तुम, लपककर ज़रा सेण्ट की शीशी तो उठा लाओ। देखो ब्वाय, माँग ठीक है ?

[पुरुष जाता है।]

ब्वाय—हुज़ूर, इधर ज़रा तिरछी है।

स्त्री—आईना ठीक से रखो। हाँ, यों। अच्छा देखो अब ठीक है ?

[पुरुष आता है।]

पुरुष—यह सेण्ट की शीशी मँगाई थी ना ?

स्त्री—और सुनो, आज शायद जमीला के घर में से किसी वक़्त आयें। उनकी ख़ातिरमदारात ज़रा अच्छी तरह कर देना। कोई शिकायत का मौक़ा न आने पाये।

पुरुष—कौन ? मसूद आयेंगे ? वह तो आया ही करते हैं, आज नई बात कौनसी होगी ?

स्त्री—मेरा मतलब यह है कि तुम ख़ुद उनको डोली से उतरवाना। वह शायद उसी वक़्त आयेंगे दस-ग्यारह बजे। जमीला ने कहा था कि उनको भेज देंगी।

[बाहर से आवाज़ आती है 'सवारी उतरवालो'।]

पुरुष—यह तो सचमुच किसी की डोली आ गई।

स्त्री—वही होंगे जमीला के घर में से। मैं बाहर जाती हूँ, तुम उनको उतरवाने जाओ ना।

पुरुष—तो क्या तुम बाहर ही से दफ़्तर चली जाओगी ? मैं चाहता था मिलती हुई जातीं। मुझे बाज़ार से कुछ मँगाना था : शेविंग स्टिक, ब्लेड्स वग़ैरा।

स्त्री—वह सब ब्वाय से कहलवा देना। आया ले आयेगी। मगर अब तुम उन बेचारे को तो उतरवाओ। डोली में बैठे घुट रहे होंगे।

पुरुष—अच्छा तुम तो जाओ, मैं जा रहा हूँ उनको उतरवाने।

[पुरुष जाता है; थोड़ी दूर जाकर फिर लौटते हुए] आते क्यों नहीं हो मसूद ? आओ चले आओ, घर में कोई नहीं है। यह क्या इस गर्मी में चादर लपेटे हुए हो ? उतारो अब इसे।

मसूद—भाभी तो घर में नहीं हैं ?

पुरुष—नहीं है। वह तो तुम्हारे आने की ख़बर सुनकर बाहर जनाने बैठक में चली गई हैं।

मसूद—जाकर मेरा सलाम तो कहलवादो।

[टेलिफ़ोन की घंटी बजती है।]

पुरुष—ब्वाय, ज़रा देखना टेलिफ़ोन।] [ब्वाय लपकता है।]

ब्वाय—हलो।······ जी हाँ डिप्टाइन साहब के यहाँ से बोल रहा हूँ। अभी नहीं गई दफ़्तर।······जी ? जी हाँ, बाहर जनाना बैठक में हैं।······जी······जी······जी। बहुत अच्छा। अभी बुलवाता हूँ, ठहर जाइये।

पुरुष—कौन है ?

ब्वाय—दफ़्तर से कोई बबुआइन टेलिफ़ोन कर रही हैं। कहती हैं कि मेम साहब को फ़ोन पर बुला दो। वह जो मुआयना करने आज आने वाली थीं उन्होंने कहलवाया है कि मैंने भूले से मेंहदी लगाली है इसलिए आज न आऊँगी।

पुरुष—तो जाओ, लपककर मेम साहब से कहलवादो।

ब्वाय—जी नहीं। मसूद मियाँ को दूसरे कमरे में भेज दीजिए। वह तो टेलिफ़ोन पर मेम साहब ही को बुला रही हैं। कुछ और बातें कहना हैं।

पुरुष—जाओ तो बुलवाना उनको। आओ मसूद, तुम इधर कमरे में आ जाओ। [कुछ क़दमों की आवाज़]

मसूद—भाभी आयें तो मेरा सलाम ज़रूर कह देना।

पुरुष—तुम ख़ुद ही न कह देना। क्या तुम्हारे मुँह में ज़बान नहीं है ?

मसूद—भई हमें तो शर्म आती है। वह बनाना शुरू कर देंगी।

[मेम साहब की आवाज आती है।]

मेम साहब—मैं आजाऊँ अन्दर?

पुरुष—आती क्यों नहीं हो। यह मसूद तुम्हें सलाम कर रहे हैं।

मेम साहब—मेरा भी सलाम कह दो और मिज़ाज पूछ दो। मैं जरा टेलिफ़ोन सुन लूँ। हलो······हाँ हाँ।······मेंहदी लगाई है? ······अच्छा।······हूँ।······हूँ, हूँ······तो फिर मैं क्या करूँगी आज आकर? डाक यहीं भेज दो किसी चपरासिन के हाथ।······ हाँ······हाँ······दस्तखत के लिए काग़ज भी।······ठीक है?······ अच्छा।

[टेलिफ़ोन रख देती है।]

पुरुष—तो अब तुम दफ़्तर नहीं जा रही हो?

मेम साहब—बड़ी ख़ुशी हुई होगी आपको? इनसे जरा पूछो तो अपने दोस्त से कि आज जमीला क्या कर रही हैं?

पुरुष—सुना तुमने मसूद, क्या कह रही हैं यह? एँ? तो तुम ख़ुद क्यों नहीं बोलते? यह इशारों में बातें करना मुझे नहीं आतीं।

मेम साहब—ओ नहीं तो क्या यह तुम्हारी तरह बारह हाथ की जबान निकालकर बंकारना शुरू कर दें?

पुरुष—मसूद कह रहे हैं कि जिनको आप पूछ रही हैं उनकी खबर आप ही को ज्यादा हो सकती है। सवेरे से ग़ायब हैं घर से।

मेम साहब—बड़ी सैलानी है यह जमीला भी। घर से दफ़्तर का बहाना किया होगा और पहुँची होगी किसी सहेली के यहाँ गुड़ियाँ खेलने। अब तो माशा-अल्ला बाजी लगाकर गुड़ियाँ खेलने लगी है। इनसे पूछो कि आख़िर यह समझाते क्यों नहीं हैं?

पुरुष—और क्या औरत जात को अगर घर में बैठने वाले मर्द समझा सकते तो दुनिया ही सुधर जाती? अपनी तो खबर लो, कभी

तुम्हारा दिल घर में लगता है ? दिन-रात तुम हो और तुम्हारी गुइयाँ हैं। आज हँडकुलिया पक रही है तो कल किसी बाग़ में झूला पड़ा है। घर में घुटने के लिए तो मर्द हैं।

मेम साहब—ओफ़ ओह ! सख़्त ग़ुस्सा आरहा है।

पुरुष—ग़ुस्सा न आये ? सिनेमा ले जाने का वादा किया वह तक तो तुमसे पूरा न हुआ।

मेम साहब—तुमने याद भी तो नहीं दिलाया। आज ही चलो दोपहर के शो में, तुमको सिनेमा दिखालाऊँ। अपने दोस्त से पूछो कि चलेंगे।

पुरुष—क्यों मसूद चलोगे ना ?

मसूद—[चुपके से] उनसे पूछा नहीं है।

मेम साहब—किससे ? जमीला से ? उनसे पूछने की ज़रूरत ही क्या है ? वह भी बेचारी इतनी मजाल रखती हैं कि मेरी बात में दख़ल दें ? मैं उनसे कह दूँगी। तुम दोनों तैयार हो जाओ। खाना-वाना जल्दी से हो जाय तो इसी वक़्त दिन के शो में हो आयें।

मसूद—[चुपके से] बच्चों को घर पर छोड़ आया हूँ।

मेम साहब—फिर कुछ भनभनाहट-सी कान में आई। यह आख़िर क्या कह रहे हैं ?

पुरुष—कह रहे हैं कि बच्चों को घर पर छोड़ कर आये हैं।

मेम साहब—अरे तो क्या हुआ ? एक दिन बाप न सही मा ही बच्चों की निगरानी कर लेगी तो क्या हर्ज है ?

ब्वाय—सरकार, आया कह रही है कि कप्तानी साहब आई हैं।

मेम साहब—कौन जमीला ? ख़ूब आई। देखो तो सही आज इस चुड़ैल की कैसी ख़बर लेती हूँ। मैंने कहा सुनते हो तुम, ज़रा उधर कमरे में चले जाओ तो यहीं बुलालूँ। और ज़रा पान भेजो अन्दर से। ब्वाय, जा बुलवाले। यह तू कहाँ चला छिपने को ? शामत तो नहीं

आई है ? बड़ा पर्दे वाला है। जाकर बुलवाले जमीला को, अन्दर ही। [ब्वाय जाता है।]

पुरुष—मैंने कहा सुनती हो, उनको भी पकड़ के सिनेमा लेती चलो।

मेम साहब—तुम जरा तमाशा तो देखो। अच्छा अब अन्दर जाओ, वह आ रही हैं। आइये, आइये। क़दम-क़दम की ख़ैर। यह कहाँ थीं सरकार ?

जमीला—[आते हुए] अपनी हाय दूसरों पर गँवाये। अपनी होश की दवा कर औरत। तेरा ख़ुद पता नहीं चलता। पूछ जरा अपनी आया से कि कितनी मरतबा आ-आकर लौट चुकी हूँ। जब पूछा मालूम हुआ बेगम सोलह सिंगार करके कहीं गई हैं।

मेम साहब—ऐ सिंगार करे है मेरी जूती। सिंगार वह करे जिसे अल्लाह ने सूरत न दी हो।

जमीला—सदक़े जाऊँ इस सूरत के। मगर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते तुम्हीं को देखा है। मालूम होता है हमारे भाई साहब ने तेरा दिमाग़ और भी ख़राब कर दिया है।

मेम साहब—ख़ैर मेरा दिमाग़ तो तुम्हारे भाई साहब ने किया है मगर तुम्हारा दिमाग़ किसने ख़राब किया है जो यह सिंदूर की बिन्दिया लगाये-लगाये फिरती हो चमकती हुई ? मैं पूछती हूँ आख़िर तुम थीं कहाँ ?

जमीला—चूल्हे-भाड़ में थी और कहाँ थी ? मेरा तो निगोड़ा काम ही ऐसा है कि दम लेने की फ़ुर्सत नहीं। दिन भर दफ़्तर में दस्तख़त करते-करते निगोड़ी उँगलियाँ शल होकर रह जाती हैं इस पर से तुर्रा यह कि इधर तहक़ीक़ात को जाओ उधर तफ़तीश को जाओ। कल ही देखो जो मैनेजर हैं ना रियासत डुप्बा के ऊँची जड़ाऊ चूड़ियाँ, कानों

के झुमके और चूलेदतियाँ न जाने कौन झाड़ू फिरी, मुई डकैत ले उड़ी है। सारी ख़ुदाई मैंने छान मारी मगर अब तक पता नहीं है।

मेम साहब—ज़रा-सी बेचारी को तफ़तीश जो करना पड़ी तो घबरा गईं। घबराना ही था तो कप्तानजी आख़िर बनी ही क्यों थीं ? किसी ने तुम्हारे हाथ जोड़े थे ?

जमीला—ऐ एड़ी-चोटी पर क़ुर्बान करूँ ऐसी मुई नौकरी। अपने तन-बदन का होश नहीं रहा है। कल की आधी चपाती खाये हुए हूँ। क़सम लेलो जो खील भी उड़कर मुँह तक गई हो।

मेम साहब—तो खाना मँगाती हूँ, मरी न जाओ।

जमीला—नहीं, मैं तो बात कहती हूँ। इस वक़्त थकी-हारी घर पर जो पहुँची तो मालूम हुआ कि घर वाले साहब रँर-रापाते को गये हुए हैं। वर्दी भी नहीं उतारी यों ही चली आई।

मेम साहब—ब्वाय! ब्वाय! तोबा है इस निगोड़े का शर्म के मारे और भी बुरा हाल है। निकल अन्दर से और खाना लाकर लगा मेज़ पर। मगर जमीला तुमको इस वक़्त पिक्चर में चलना है।

जमीला—कौन मैं ? मुझे भला कहाँ छुट्टी है। यहाँ से एकाध निवाला खाकर सीधी कोतवाली जाऊँगी, वहाँ सब थानेदारनियाँ इन्तज़ार कर रही होंगी।

मेम साहब—यह मैं कुछ नहीं जानती। तुमको आज तो चलना ही पड़ेगा। ऐ है, तुम्हारी ये चूड़ियाँ कैसी अच्छी हैं। कहाँ से मँगवाईं ?

जमीला—ये चूड़ियाँ ? ये तो वर्दी की हैं इस वक़्त सारे ज़ेवर पहने हूँ। [ब्वाय आता है।]

ब्वाय सरकार, वह मैंने कहा······[शर्मा जाता है।]

मेम साहब—चल दूर! मुए की शर्म न हुई दीवानी हो गई। अब कह भी चुक क्या कह रहा था।

ब्वाय—खाना लगा दिया है।

जमीला—शर्माया तो ऐसा था कि मैं समझी कि अपने घर वाले का नाम ले रहा है।

मेम साहब—आओ जमीला, अब उठ भी चुको। मगर यह समझ लो कि तुमको पिक्चर चलना है चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय।

जमीला—कैसी बातें कर रही हो ? इस वर्दी में कसी हुई भला सिनेमा कैसे जा सकती हूँ ? तुम उनको ले जाओ शौक़ से वह देख आयें।

मेम साहब—वह तो जा ही रहे हैं मगर तुमको भी चलना होगा। अल्लाह मेरी जमीला बड़ी अच्छी बिटिया है। अच्छा ख़ैर चलो पहले खाना तो खालो। [दोनों उठकर जाती हैं। कुछ बर्तनों की खड़खड़]

जमीला—अल्लाह रे तेरे तकल्लुफ़ ! मैं आदमी न हुई अल्लाह रे क्या देव हो गई कि इतना सामान मेरे लिए है।

मेम साहब—तुम यह लो यह तुम्हारे भाई साहब ने अपने हाथ से ख़ास तौर पर पकाया है। वाह री औरत ला इधर प्लेट।

जमीला—ना बहन बस मैं इससे ज्यादा न लूँगी।

मेम साहब—अच्छा ज़रा-सी शीरमाल और सही, लो तो सही।

जमीला—ऐ, है, तो क्या मैं जान दे दूँ खाकर ? मुई आधी चपाती की तो ख़ुराक। मेरा तो इतने खाने देखकर ही पेट निगोड़ा मारा भर गया।

मेम साहब—व्वाय ज़रा पूछना इनके घर में कि यह घर पर भी यों ही तकल्लुफ़ करती हैं।

जमीला—वह बेचारे क्या बतायेंगे, मगर अल्लाह जानता है पेट भर गया।

मेम साहब—तो तुमने खाया ही बेकार, सूँघ लेलीं। यह पुलिस की नौकरी और यह चरकौवों की-सी ख़ुराक !

जमीला—और तुम्हारी ख़ुराक कौनसी हाथियों की-सी है ? टूग रही थीं बैठी हुई तुम भी ।

मेम साहब—ओफ़ ओह ! बारह बजने में दस मिनट रह गये, अब जल्दी करो। देखो ब्वाय अन्दर मर्दाने में खाना हो गया हो तो कहो कि चलने को तैयार हो जायें और उससे रहीमन से कहो कि मोटर लगाये ।

जमीला—मुझे इस वक्त न ले जातीं तो अच्छा था। मैं सच कहती हूँ बहुत काम पड़ा हुआ है ।

मेम साहब—अच्छा अब इस बारह हाथ की लल्लो को क़ाबू में रखो, एक बात नहीं चाहती, समझीं कि नहीं ! मैं कब तुमसे कहा करती हूँ चलने को ?

जमीला—फिर किसी दिन सही, मगर आज तो तुम्हारी क़सम इतना काम है कि मैं क्या कहूँ ?

[ब्वाय आता है ।]

ब्वाय—सरकार मोटर लगा दिया गया है और अन्दर दोनों साहब तैयार हैं ।

मेम साहब—तैयार हैं तो बुलाओ ना हम दोनों भी तैयार ही हैं ।

[ब्वाय जाता है ।]

जमीला—फिर वही तुमने कहा हम दोनों ? मुझे आज न ले जाओ । कहना सुना करो, हमेशा की ज़िद्दन हो तुम ।

मेम साहब—अच्छा न जाओ । मैं भी नहीं जाती । चूल्हे में जाय मुआँ सिनेमा और आग लगे पिक्चर को । मैं तो पहले ही जानती थी कि तुम हज़ारों नख़रे करोगी । आज तक कभी तुमने मेरी बात मानी होती तो आज भी मानतीं । नौज बीवी कान पकड़े अब जो तुम से कभी कहूँ ।

जमीला—खफ़ा हो गईं। तौबा है अल्लाह। जरा-जरा सी बात पर खफा होती हो तुम तो।

मेम साहब—तुम बात ही ऐसी करती हो। कैसा मैंने लिलककर कहा था कि सिनेमा चलो। मगर तुमको हमेशा उसी वक्त नखरे सूझते हैं जब मैं खुशामद करूँ। आज से कभी जो कहूँ। भरपाया, कान पकड़े।

जमीला—अरे मेरी बन्नो! अच्छा अब हँस दो नहीं तो मैं गुद-गुदाती हूँ। चलो मैं चलती हूँ।

मेम साहब—मुआ दिल जला के रख दिया, अब चली हैं वहाँ से लल्लो-पत्तो करने।

जमीला—अच्छा अब चुप भी रहो, नहीं तो फिर मैं उठती हूँ। लो और सुनो, बिचारी ऐंठ ही के रह गई। उठो अब वह दोनों आ रहे हैं।

मेम साहब—आइये, आइये। आप दोनों चलिये मोटर पर हम दोनों भी आ रहे है।

जमीला—तो चलो साथ ही क्यों नहीं चलतीं? घर वाले के साथ जाते हुए शर्म आती है।

मेम साहब—ऐ जनाब मैंने कहा सुनते हैं आप, यह टाई बुर्क़े के अन्दर कर लीजिये तो अच्छा है।

जमीला—और आप भी जरा मूँछों को बाहर न रखें तो अच्छा हे वैसे मैं आपकी कनीज हूँ।

मेम साहब—इन दोनों को मर्दाने दर्जे में बैठाओगी या साथ?

जमीला—मैं मर्दाने दर्जे की क़ायल नहीं हूँ। माले-अरब पेश अरब...।

मेम साहब—अच्छा बैठो तुम इधर बाहर की सीट पर आ जाओ। देखो रहीमन पर्दा दुरुस्त करो उड़ रहा है।

[ मोटर के चलने की आवाज़। फिर सड़क पर शोर-गुल।

मोटर आकर सिनेमा के पास रुकती है ।]

जमीला—मैं टिकट लिए लेती हूँ, तुम ज़रा इन सवारियों के पास ही रहना ।

मेम साहब—तमाशा देर हुए शुरू हो चुका है, जल्दी से टिकट ले लो ।

जमीला—अभी लाई । [जाती है ।]

मेम साहब—ओ साहब कोट का दामन तो अन्दर कर लीजिये बुर्क़े के । ऐनक तो यों ही चमक रही है । और ज़रा इनसे भी कहिये अपने दोस्त से कि टाई छिपायें ।

पुरुष—[चुपके से] हवा के मारे बुर्क़ा ही क़ाबू में नहीं है ।

मेम साहब—अच्छा ख़ैर, अब यहाँ सैकड़ों औरतों में ज़बान ही न खोलिये । ज़रा देर चुप रहने में कोई हर्ज नहीं है । नोज बीवी न किसी की शर्म न हया । इन मर्दों के दीदों का पानी तो जैसे सचमुच मर गया है । हवाई दीदा हैं आजकल के मर्दुवे । [जमीला आती है ।]

जमीला—चलो, जल्दी चलो बहुत कुछ तमाशा हो चुका है । [सब जाते हैं ।]

[ धीरे-धीरे किसी फ़िल्मी गाने की आवाज़ क़रीब आती है जो देर तक होता रहता है । उसी के दरम्यान मेम साहब कहती हैं ।]

मेम साहब—जमीला, ज़रा इन साहबज़ादी को देखना जब से हम लोग आये हैं इनकी नज़रें इन बुर्क़ों पर जैसे जम कर रह गई हैं ।

जमीला—ऊँह, होगा भी । तुम तमाशा देखो ।

मेम साहब—और इस औरत को तो देखो वह भी इसी तरफ़ देख रही है । जी चाहता है कि दीदे फोड़ दें कम्बख़्त के ।

जमीला—तुम को आख़िर इसकी कौनसी फ़िक्र है ? देख रही है तो देखने दो ।

मेम साहब—नहीं मैं पूछती हूँ कि ये तमाशा देखने आती हैं कि

शरीफ़ घरानों के पर्दादार मर्दों को घूरने आती हैं। जैसे इन कम्बख़्तों के तो बाप-भाई हैं ही नहीं।

जमीला—तौबा है! यह तुम तमाशा देख रही हो कि इसी फ़िक्र में हो?

मेम साहब—ऐ लो, इण्टरवल हो गया।

जमीला—ऐ है, ज़रा देखना तुम्हें मेरी क़सम ये कौन बेगम साहब हैं जो अपने मर्दुए को मारे फ़ैशन के बिल्कुल बे-पर्दा लाई हैं।

मेम साहब—और सूरत देखो मर्दुए की जैसे मुआ डाकू। ऐसी सूरत को तो कभी बे-पर्दा न करे।

जमीला—न सूरत न शकल भाड़ में से निकल। नौज बीवी ऐसा भी क्या मुआ फ़ैशन कि घर के मर्दों का पर्दा उड़ा दिया जाय।

मेम साहब—ऐ, पर्दा तो अब उठता ही जाता है। कुछ दिनों में सभी मर्दुए सड़कों पर निकल पड़ेंगे।

जमीला—नौज सड़कों पर निकल पड़ें। अल्लाह न करे हमारी तुम्हारी जिन्दगी में ऐसा हो।

[सिनेमा की घण्टी बजती है कि इतने में कुछ मर्दों के लड़ने की आवाज़ आती है।]

मेम साहब—लो और सुनो, मर्दाने दर्जे में लड़ाई हो गई।

जमीला—इसीलिए तो मैं मर्दों को साथ बिठाना अच्छा समझती हूँ। भला यह भी कोई शरीफ़ बेटों-दामादों का काम है कि वह इस तरह बंकार-चंकार कर लड़ें?

[लड़ाई की आवाज़ तेज हो जाती है।]

नम्बर १—तू क्या समझा है अपने को?

नम्बर २—और तू क्या समझता है अपने आपको?

नम्बर १—बुलाऊँ मैं अपने यहाँ की औरतों को?

नम्बर २—अरे तो मैं भी अकेला नहीं हूँ। मेरे यहाँ की औरतें भी हैं।

नम्बर १—तो तुम इस जगह से नहीं हटोगे ?

नम्बर २—क़यामत तक नहीं हटेंगे। और अगर हिम्मत हो तो हटाकर देखलो।

नम्बर १—अच्छा हट तो सही यहाँ से।

नम्बर २—ख़बरदार जो हाथ लगाया मेरे।

नम्बर १—अबे हाथ के बच्चे ले।

नम्बर २—हट उधर। [एक आम शोरो-ग़ुल के अन्दर मेम साहब की आवाज नुमायाँ होती है।]

मेम साहब—ऐ हैं, अब क्या पड़े हुए सोया ही करोगे। दफ़्तर जाना नहीं है ?

पुरुष—[नींद से होश्यार होते हुए] ऐं ?···ऊँह···आख़ा !

मेम साहब—तुम तो कहते थे आज दफ़्तर में मुआयना है। और धूप चढ़ आई है अब तक पड़े ऐंठ रहे हो।

पुरुष—उफ़ ओह !···वाक़ई देर होगई···। दाढ़ी का पानी, शेव का सामान। [घण्टा नौ बजाता है।] अरे यह तो नौ बज गये। लाहौल वला कूवत। आख़िर जगाया क्यों न गया अब तक ? अब जल्दी करो। मैं अभी तैयार होता हूँ, जल्दी करो, जल्दी करो।

[जाता है।]

# इतवार

[खर्राटों की आवाज़, घड़ी आठ बजाती है। उसके बाद फिर खर्राटों की आवाज़, क़दमों की चाप, बीवी आती है।]

पत्नी—लो और सुनो, अब तक पड़े हुए ऐंठ रहे हैं। तमाम सिर पर धूप है और नींद तो कोई देखे कैसी गफ़लत की है जैसे घोड़े बेच के सोये हैं। ऐ मैं कहती हूँ कि उठते हो कि नहीं···सुना तुमने ?···ऐ उठो मुई दुपहर होने को आई।

पति—ऊँ···उँह···आख़···ख़ाह। लाहौल वल कूव्वत · सोना हराम कर दिया है।···

पत्नी - तो क्या बस सोये जाओगे आज ? मण्डी भी मुई बन्द हो जायगी और सब काम फिर पड़े रह जायेंगे।

पति—तोबा है साहब आज इतवार के दिन भी नींद भर के सोने नहीं दिया जाता।

पत्नी—अच्छा तो तुम सोओ। मगर मैं भी लकड़ियों की तरह अपने हाथ-पैर चूल्हे में न जलाऊँगी। आटा तक तो घर में ख़त्म हो गया है। हफ़्ता भर तो इतवार का आसरा देखा जाये और इतवार के दिन तुम पड़कर ख़र्राटे लो। तो क्या मैं घर के बाहर निकल जाऊँ ? थोड़ी देर में नन्ही और उसके दूल्हा आते होंगे। तुमको पड़के सोना ही था तो बुलावा क्यों दे बैठे ?

पति—अच्छा साहब, उठता हूँ जरा। तुम्हारी चीख़-पुकार में तो अँगड़ाइयाँ लेना भूल गया। ख़ुदा ख़ैर करे, कच्ची नींद उठा हूँ दिन भर सर में दर्द रहेगा।

पत्नी—रोज छः बजे दफ़्तर जाते हो जब सर में दर्द नहीं होता ? हाँ इतनी देर धूप में पड़े सिकते रहे हो, दर्द हो जाय तो क्या ताज्जुब है। मुई दो मरतबा चाय गरम की गई और मिट्टी हो गई।

पति—तो आख़िर क्या बज गया है जो ज़मीन-आसमान एक किये

देती हो ? मुझे ख़ुद आज सैकड़ों काम हैं; मगर इतवार के दिन ज़रा इत्मीनान से सोने को दिल चाहता ही है।

पत्नी—ख़ैर तुम मेरे काम कर दो। उसके बाद चाहे अपने काम करो या पड़के सो रहो, मुझ से कोई मतलब नहीं।

पति—नहाना एक, अरे तौबा ! पहले बाल बनवाना दूसरे नहाना। तीसरे आज इरादा है कि बहुत-से ख़त पड़े हुए हैं जवाब दे दूँ। फिर, फिर ठीक है आज ब्रिज उड़ेगी गोपी के यहाँ। सब वहीं जमा होंगे और फिर सिनेमा···

पत्नी—और घर का जो काम है वह गया चूल्हे में। गेहूँ ख़रीदकर पनचक्की भिजवाना। किसी बच्चे के पास गत के कपड़े नहीं हैं। तुम्हीं ने कहा था कि इतवार के दिन कपड़े लाऊँगा। नन्हीं की आँखें डाक्टर को दिखाने के लिए तुम्हीं ने कहा था। वह थोड़ी देर में आती ही होंगी अपने दूल्हा के साथ। क़मर का हाल भी कहना है डाक्टर से। और देखो, मैंने कह दिया है कि आज अगर मिट्टी के तेल का पीपा न आया तो रात को चिराग़ में बत्ती भी न पड़ेगी।

पति—और कुछ याद कर लीजिये। अब तो सिर्फ़ तीन-चार दिन ही का काम आपने फ़रमाया है। दिन भर तो पनचक्की के नज़र हो जायगा, फिर नहाऊँगा क्या अपना सर ? तमाम हफ़्ते इतवार का इन्तेज़ार किया था कि ज़रा दोपहर को खस की टट्टी छिड़क कर सोयेंगे तो आपने मिट्टी का तेल छिड़ककर मर रहने की तरकीब बता दी।

पत्नी—मैं कहती हूँ कि आख़िर फिर मैं क्या करूँ ? मेरे पास कौन से नौकर-चाकर हैं जो यह सब काम करें। एक मुआँ बोरा-सा लड़का है कि शलजम मँगाओ तो कद्दू उठा लाये। कल ही निगोड़े मारे से मिट्टी के तेल के लिए समझा के कह दिया था, वह मुआँ चँबेली का तेल उठाकर ले आया। अब कहो तो उससे यह सब काम कराऊँ ?

पति—तो मतलब तुम्हारा यह है कि हर रोज दफ़्तर की चक्की पीसूँ और इतवार के दिन भी घनचक्कर की तरह नाचता फिरूँ।

पत्नी—अच्छा तो तुम कहो तो मैं ही बुर्क़ा पहन कर निकलूँ घर के बाहर ?

पति—अब ये ताने शुरू हुए। कभी तो मुझ कम्बख़्त कोल्हू के बैल के साथ भी तुमने हमदर्दी की होती। अच्छा, अगर मैं मर जाऊँगा तो घर का काम कौन करेगा ?

पत्नी—.ख़ुदा न करे, दुश्मन मुद्दई। मैं कहती हूँ कि आख़िर यह मुई कौन सी ज़बान है तुम्हारी ?

पति—मारे तो डालती हो और मरने का ज़बान से नाम लिया तो चलीं वहाँ से दुश्मन मुद्दई करने। अच्छा साहब फ़र्माइये क्या-क्या आयेगा ? नहाना-धोना सब गया जहन्नुम में। अब मेरा मुँह क्या तक रही हो, ज़रा काग़ज़, क़लम, दवात लेकर सब चीज़ें लिख दो तो दफ़ान हूँ मैं यहाँ से। यह आख़िर किधर गया कलुआ ? कलुआ ! [ज़ोर से पुकारता है] ओ कलुआ के बच्चे !

कलुआ—[दूर से] आ रहा हूँ मियाँ। [आता है।] मैं नहा रहा था मियाँ।

पति—'बाग़ के मजदूर ही अच्छे रहे शद्दाद से'। आप नहा रहे थे। उठा के ला क़लमदान वहाँ है।

कलुआ—जी हाँ।

पति—अबे जी हाँ क्या ? खड़ा हुआ सर हिला रहा है। क़लमदान उठा के ला।

पत्नी—जिससे लिखते हैं वही उठा ला मुँए पागल। [कलुआ जाता है।]

पति—यह नौकर मिला है जानवर कहीं का। तमाम बातें क़िस्मत ही से होती हैं। उन्हीं के यहाँ का नौकर कितना अच्छा है।

पत्नी—नन्हीं के यहाँ की न कहो, वहाँ नौकर पर क्या है तमाम काम तो नन्हीं के दूल्हा ख़ुद ही कर लेते हैं। ज़रा-ज़रा सी बात की उनको फ़िक्र रहती है। क्या मजाल कि वक़्त पर कोई काम न हो।

पति—बस दुनिया भर में एक नामाक़ूल अगर हूँ तो मैं। यही मतलब है न तुम्हारा ?

पत्नी—यह तो ख़ैर मैंने नहीं कहा। मगर तुम हो तो बे-परवाह ज़रूर।

पति—इसी को बे-परवाह कहते हैं ? मैं बे-परवाह हूँ ! यही मेरी बे-परवाही है कि रोज दफ़्तर में मरा करता हूँ और इतवार के दिन पैरों में सनीचर बाँधकर सुबह से शाम कर देता हूँ।

पत्नी—अच्छा ख़ैर, तुम तो इस वक्त बेबात की बात पर लड़ने को तैयार हो। [कल्लू आता है।] अरे मुँए, यह क्या उठा लाया ? यह क़लमदान है, इसी से लिखा जाता है ?

पति—स्लेट लाया है गधा कहीं का। ला मेरे सर पर दे मार अब इसे। खड़ा हुआ मेरा मुँह देख रहा है।

कलुआ—सरकार लिखने के लिए।

पति—अबे चुप, लिखने का बच्चा। यह भी किसी मर्ज़ की दवा नहीं।

पत्नी—दिन भर मुँआ इसी तरह भौंकवाता है जैसे मुँआ भेड़िये के भिट से निकला है। आदमी तो किसी तरफ़ से मालूम नहीं होता। अरे कम्बख़्त वह जो है नहीं लम्बा-सा सन्दूक़चा, हमाम में रखा होगा।

पति—[बात काटकर] सुभानअल्लाह ! क्या हुस्ने-इन्तेज़ाम है। बे-परवाह मैं हूँ और क़लमदान रखा जाता है आपके यहाँ हमाम में। ग़ुस्ल फ़र्माती होंगी आप लिखने की मेज़ पर बैठ कर ? इसी का नाम है—अन्धी नगरी चौपट राज।

पत्नी—धोबी को कपड़े बटोर-बटोर कर दे रही थी, वहीं मैंने कहा

लिखती भी जाऊँ। इस मुँए से कहा था कि क़लमदान उठा लेना, मगर यह तो है जानवर।

कलुआ—अच्छा वह क़लम और स्याही का डिब्बा। हम भी कहें कि क़लमदान क्या चीज ! [दौड़ता है।]

पति—जंगली कहीं का। इतने दिन हो गये और क़लमदान तक नहीं पहचानता ? अब आप मेहरबानी फ़र्माकर काग़ज़ तो उठा लाइये। नहीं तो वह ख़ुदा जाने सूप उठा लाये या छलनी…।

[पत्नी जाती है, पति बड़बड़ाता है।] यह इतवार है हमारा ! तमाम दिन बाजार के चक्कर लगेंगे; दिन भर की धूप सर से गुज़रेगी। लू लगेगी मगर मौत फिर भी न आयेगी। [चीखता है।] अब ला भी चुको काग़ज़-वाग़ज़ ! [बेगम तेज़ी से आती है।]

पत्नी—ला तो रही थी, देखो काम का काग़ज़ तो नहीं है।

पति—हाँ, हाँ अब जेल भी भिजवा दो। तुम से दफ्तर का बस्ता टटोलने को किसने कहा था कि सब सरकारी काग़ज निकाल लाईं। भई नाल्क़ा बन्द कर रखा है तुम लोगों ने तो। कलुआ की सोहबत में तुम भी देख लेना मोज़े की जोड़ी की जगह इंशाअल्लाह उगालदान उठा लाया करोगी।

पत्नी—ऐ ख़ुदा न करे मेरा दिमाग़ ऐसा ख़राब हो जाये। मैंने तो यह देखकर कि इस काग़ज पर बस एक सतर लिखी हुई थी, निकाल लाईं इसे।

पति—जी हाँ, इस एक सतर में एक हज़ार रुपये का हिसाब लिखा हुआ है। रखिये इसे वहीं और कोई बेकार-सा काग़ज लाइये ना किसी कापी-वापी में से निकाल कर।

[कलुआ आता है।]

कलुआ—यह है मियाँ वह जिसको आपने कहा था, जाने क्या कहा था ?

पति—जी हाँ, यही है। अब अगर भूला कि इसका नाम क़लमदान है तो मारते-मारते उल्लू बना दूँगा। क्या है बोल ?

कलुआ—यह···क़लम···और···।

पति—क़लमदान। कहो क़लमदान।

कलुआ—क़लमदान।

पति—अब न भूलना। [बेगम काग़ज लेकर आती है।] आइये अब जल्दी से। न चाय-पानी यह हमारा इतवार आया है। खुदा की मार ऐसी छुट्टी पर !

पत्नी—ऐ है ! इस आफ़त में मुझको सचमुच खयाल ही न रहा। चल तो कलुआ, जरा पानी चूल्हे पर रखदे।

पति—पानी रखदे ! अब दोपहर को चाय मिलेगी ! खैर, अब आप लिखवाइये तमाम चीजें।

पत्नी—लिखो बीस सेर गेहूँ।

पति—बीस सेर गेहूँ ? ये एक हफ्ते के हुए गोया। ये हम लोग आदमी हैं या पनचक्की हैं, आखिर मामला क्या है ?

पत्नी—एक हफ़्ते के क्यों हुए और ज्यादा चलेंगे। अगर मैंने लिखवा दिये यूँ ही वक्त-बेवक़्त के लिए।

पति—अच्छा साहब, लिखवाइये और कुछ वक़्त-बेवक़्त के लिये हूँ।

पत्नी—चना लिखो पाँच सेर।

पति—चना पाँच सेर ! इस घर में घोड़े भी बसते हैं ?

पत्नी—तौबा है, दालवाल के लिए चाहिये थे। बेसन घर में बिल्कुल नहीं है। माश और अरहर की दाल दो-दो सेर; मूँग की दाल आध सेर; खड़ी मसूर आध सेर।

पति—अब जरा ठहर जाइये। क़लम आपकी जबान से बंधा हुआ तो है नहीं, मेरे हाथों में है। माश और अरहर की दाल दो-दो सेर यानी दो सेर यह और दो सेर वह।···और···।

पत्नी—मूँग की दाल आध सेर; खड़ी मसूर आध सेर।

पति—अच्छा साहब, आध सेर। और ?

पत्नी—दली मसूर आध सेर; खड़े माश आध सेर; खड़े मूँग आध सेर।

पति—और भी कुछ दालें बाक़ी है ?

पत्नी—बड़ियाँ मूँग की पाव भर, बड़ियां माश की पाव भर।

पति—देखो कुछ रह न जाये अज़ क़िस्मे ग़ल्ला।

पत्नी—नहीं, बस यह ख़तम।

पति—ख़ैर शुक्रिया आपका, तो बस ?

पत्नी—अब मसाला लिखो—हल्दी, धनिया, खटाई, मिर्च, नमक।

[दरवाज़े पर दस्तक]

पति—कौन है भई कलुआ ? [आवाज़ देता है।] अबे ओ कलुआ ! देख ज़रा बाहर कौन है ?

पत्नी—कहीं नन्हीं और उनके दूल्हा तो नहीं आगये, ज़रा देखना तो क्या बजा है ?

पति—दस बजने में दस मिनट। [कलुआ आता है।]

कलुआ—मियाँ वह हैं, क्या नाम है उनका। देखिये वह।

पति—अबे क्या नाम है बोल जल्दी ?

नवागन्तुक—भाई साहब, मैं हूँ अज़ीज़।

पत्नी—अज़ीज़, नन्हीं के दूल्हा।

पति—लाहौलवला क़ूवत ! [आवाज़ देकर] आ जाओ ना भाई, तुम्हारा इन्तेज़ार ही था।

[अज़ीज़ और नन्ही का प्रवेश]

अज़ीज़—आदाब अर्ज़ भाई साहब, तसलीम आपा।

पति—जीते रहो, इधर निकल आओ अज़ीज़ मियाँ।

पत्नी—आओ नन्हीं तुम मेरे पास आ जाओ। ले कलुआ ताँगे वाले को किराया दे आ। [कलुआ जाता है।]

अजीज़—कहिये आज तो इतवार है। जब ही इत्मीनान से बैठे हैं।

पति—हाँ, यानी नहीं भई कुछ काम कर रहा था और इनको भी कुछ जिन्स वग़ैरह मँगानी थी।

अजीज़—अच्छा तो यह कहिये आज घरदारी हो रही है।

पति—घरदारी क्या हो रही है, जान अज़ाब में है। हफ़्ते भर के बाद छुट्टी का एक दिन मिले और वह भी इस झक-झक के नज़्र हो जाये। नोन, तेल, लकड़ी—आदमी न हुए घनचक्कर हो गये।

अजीज़—ओहो! आप तो घर के कामों से सख़्त आजिज़ मालूम होते हैं।

पति—यानी ये आजिज़ होने की बातें हैं।

नन्हीं—दूल्हा भाई हमारे घर के कामों से हमेशा आजिज़ रहे।

अजीज़—यह असल में तरबियत की बात है।

पति—क्या मतलब? यानी तरबियत कैसी?

अजीज़—मेरा मतलब यह है कि आपको शुरू ही से घर के मामलात से बेगानगी रही होगी।

पत्नी—हमेशा से यही हाल है इनका।

पति—ये घर के सब काम गोया कोई आके कर जाता है।

अजीज़—ख़ैर काम तो किसी-न-किसी तरह हो ही जाता है; मगर आप तो इस वक़्त सख़्त परेशान मालूम होते हैं।

पत्नी—अभी तो सोके उठे हैं। मुँह भी नहीं धोया।

अजीज़—अच्छा, अब उठे हैं दस बजे?

पत्नी—हाँ कोई घण्टा-भर हुआ होगा। उसी की परेशानी है और चिड़चिड़े हो रहे हैं।

पति—फिर वही। अरे साहब, चिड़चिड़ा इसलिए हो रहा हूँ क़लम-दान माँगो तो नौकर साहब स्लेट उठाकर लायें। क़लमदान ढूँढा जाय तो वह मिले हमाम में।

नन्हीं—क्या कहा हमाम में?

पति—जी हाँ, आपकी हमशीरा-ए-मुअज्जम जो हैं ना उनका दफ़्तर वाके हुआ है हमाम शरीफ़ में।

अजीज—साहब, यह हमाम में क़लमदान की एक ही रही।

नन्हीं—हमारे यहाँ तो ऐसी कोई बेतुकी बात हो जाय तो यह सारा घर सर पर उठालें।

अजीज—हाँ बेशक। मैं तो यह नहीं देख सकता कि क़लमदान हमाम में हो और साबुनदानी लिखने की मेज पर।

पति—यही तो मैं भी चीख़ रहा हूँ कि आखिर इस घर का नक़्शा क्या है?

पत्नी—अब चले हैं यहाँ से बातें बनाने! ग़ुस्सा इस पर है कि साढ़े आठ बजे मैंने सोते में उठा क्यों दिया। इतवार था तो दिन भर सोने देती।

पति—अच्छा, ख़ैर यही सही। तो भी मेरा कौन सा क़ुसूर हुआ? क्यों भई अजीज, क्या छुट्टी के दिन आराम करने को तुम्हारा दिल नहीं चाहता?

अजीज—जी हाँ, दिल क्यों नहीं चाहता। मगर आराम यही है कि दफ़्तर के काम से निजात मिल जाती है और अपने बाल-बच्चों में इन्सान रहता है और अपने घर के काम करता है।

पति—ख़ैर, ख़ैर। मतलब यह कि अगर वह जरा ज्यादा सोये तो आखिर कौनसा जुर्म है?

अजीज—यह तो छुट्टी क्या मानी आँधी आये, पानी बरसे कुछ भी हो पाँच बजे टहलने जरूर चले जाते हैं।

पति—पाँच बजे ? तो भई तुम इलाज क्यों नहीं करते ? यह दिमाग़ की ख़ुश्की कोई अच्छी चीज तो है नहीं।

पत्नी—लो, और सुनो। बस यही इनकी बेतुकी बातें होती हैं।

अज़ीज़—यह दिमाग की ख़ुश्की की एक ही रही। मैं तो बचपन से अँधेरे मुँह उठने का आदी हूँ।

पति—तो मतलब यह कि तुमको इतवार के दिन कम-से-कम यह चक्की तो पीसना नहीं पड़ती। तुम अपने इत्मीनान से यहाँ तक चले तो आये मियाँ-बीवी। और एक मैं हूँ कि आज इंशाअल्लाह दम मारने की मुहलत न मिलेगी।

अज़ीज़—तो क्या यह सब काम आप महीने के पहले इतवार को नहीं कर लेते ?

पत्नी—तौबा करो। इनको इतवार के दिन सोने या दोस्तों में ताश खेलने से ही कब फ़ुर्सत हुई है ?

अज़ीज़—ताश ?

नन्हीं—क्या दूल्हा भाई ताश भी खेलते हैं ?

पति—ताश नहीं तो अपना सर खेलता हूँ। कभी दोस्त-अहबाब में बैठकर एक-आध घण्टा ब्रिज हो गया तो उसका नाम रखा गया है ताश।

नन्हीं—इनको तो इस क़िस्म की बातों से जैसे नफ़रत ही-सी है बिल्कुल।

पत्नी—ऐ है, बस यही न कहना नहीं तो अभी बिगड़ जायेंगे। मैंने तो मुँए इस मनहूस खेल के लिए कहना ही छोड़ दिया है।

पति—कम-से-कम तुमने नन्हीं से यही सबक लिया होता कि यह कभी अपनी क़िस्मत का रोना तुम्हारी तरह नहीं रोती। अब की उसने अपने मियाँ की तारीफ़ ही की है। मुझे तो सच पूछो अज़ीज़ की क़िस्मत पर रश्क है।

पत्नी—तुम अज़ीज़ की क़िस्मत पर रश्क करो। मगर मैंने आज तक नहीं कहा कि मुझको नन्हीं की क़िस्मत पर रश्क है, हालाँकि अगर मैं कहती तो कुछ झूठ भी न था। पहले कोई अज़ीज़ का जैसा सुगढ़ तो होले।

पति—और मुझमें तो सैकड़ों ऐब हैं। मसलन इतवार के दिन ज़रा सो रहता हूँ। मसलन अगर दोस्तों ने मजबूर किया तो ज़रा ताश खेल लेता हूँ। हाँ मुझको लगी लिपटी बातें करना नहीं आतीं जैसी आम तौर पर शौहर किया करते हैं बीवियों के साथ। मगर मुक़द्दर को क्या करूँ? अच्छा खैर, लाइये वह कहाँ गई आपकी फ़ेहरिस्त?

पत्नी—अभी इसमें कुछ लिखा भी गया है। बस दालें और गेहूँ ही तो लिखे गये हैं।

नन्हीं—और दूल्हा भाई, मेरे लिए चश्मे का भी आपको इंतेज़ाम करना है आज ही। आँखें बिल्कुल खराब होकर रह गई हैं। आपके दोस्त वह डाक्टर किस वक़्त मिलेंगे?

पति—वह······वह इस वक़्त कहाँ? मज़े में ब्रिज उड़ा रहे होंगे और मुझे कोस रहे होंगे। आज इतवार का दिन है वह मेरी तरह घर के ख़िदमतगार तो हैं नहीं।

अज़ीज़—तो उनसे कोई और वक़्त मुक़र्रर कर लिया जाये ना।

पति—भई अगर इस वक़्त उन्होंने मुझे देख भी पाया तो बस पकड़ लेंगे ताश खेलने के लिए। और सब काम धरा रह जायगा। शाम को जाऊँगा उनके पास। इस वक़्त तो इस झगड़े को निपटा लेने दो। कहाँ लग गईं? बताओ न चीज़ें मेरे कफ़न-दफ़न की।

नन्हीं—ख़ुदा न करे दूल्हा भाई! आप तो सचमुच औरतों की तरह कोसने भी सीखते जाते हैं।

अज़ीज़—भई ख़ुदा का शुक्र है कि हमारे घर में यह क़यामत बरपा नहीं होती।

पत्नी—तुम्हारे यहाँ गया दुनिया जहान में न होती होगी। अब तुम ही बताओ कि क्या मैं घर के बाहर निकल जाऊँ? इन सब कामों के लिए नौकर रखा तो मुँआ ऐसा—वह देखो! देख रही हो नन्हीं? मुँआ चूल्हे के पास बैठा इस गर्मी में ऊँघ रहा है।

पति—तो यह भी मेरा क़ुसूर है? ऊँघ रहा है, ऊँघ रहा है नौकर। और उसकी ज़िम्मेदारी भी मेरी ही गर्दन पर है, मैं सच कहता हूँ कि इस घर में अब जहन्नुम का मजा आने लगा है।

अज़ीज़—भई हमारा घर तो ख़ुदा के फ़ज़्ल से जन्नत है।

पति—बात यह है कि तुम को मिली है नन्हीं की-सी बेज़बान बीवी।

पत्नी—नन्ही को मिला है अज़ीज़ का-सा फ़रिश्ता शौहर।

पति—और तुमको मैं शैतान मिला हूँ गोया—लाहौलवलाक़ूवत।

नन्हीं—[ हँसकर ] दौड़िये भी तो दूल्हा भाई।

पति—क्या बात, क्या कहा?

अज़ीज़—[ हँसकर ] बड़ी शरीर हो। [ फिर हँस कर ] इसका मतलब है लाहौल से शैतान भागता है तो आप भी भागिये ना।

पति—मैं सच कह रहा हूँ कि वह मैं ही था जिसने इन मुसम्मात के साथ निबाह करके दिखा दिया। कोई शौहर तो शौहर बैल भी इतना काम नहीं कर सकता जितना मैं कर लेता हूँ। और फिर सुस्त का सुस्त और बेपरवाह।

पत्नी—अच्छा तो अब तुम ही फ़ैसला करो अज़ीज़ मियाँ, कि मैं इन बातों के लिए आख़िर किससे कहा करूँ? जो यह सवेरे से जुज़बुज़ हो रहे हैं और बात-बात पर कोसा-काटी हो रही है।

पति—अजी छोड़ो यह फ़ैसला-वैसला! फ़ैसला होगा अब क़यामत में। तुम तो मुझे बताओ कि और क्या-क्या काम हैं! धूप बढ़ रही है। आज दिन भर भूखा-प्यासा फ़ाक़े से लू के थपेड़े खाऊँगा। यह है हमारा इतवार, मनहूस कहीं का। यह छुट्टी मिली है हमको, छिः!

पत्नी—तो तुम रहने दो । मैं उसी कलुआ को भेजकर नन्हीं के यहाँ से ग़फ़ूर को बुलवाये लेती हूँ । वह ला देगा, तुमने तो नाहक़ की आफ़त मचा रखी है ।

अज़ीज—अरे साहब, मैं हाज़िर हूँ । मगर भाई साहब, यह है बड़ी बुरी बात कि आप घर के काम से घबराते हैं ।

पति— यानी अजीब दिमाग़ के आदमी हो तुम भी । घबरा कौन नामाकूल रहा है, मगर ज़रा कामों की फ़ेहरिस्त तो देखो । और यह इतवार का एक दिन देखो । मियाँ, ख़ते-गुलामी लिखवालो जो इतना काम एक दिन में कोई माई का लाल कर दे । चले हो तुम वहाँ से बातें बनाने ।

नन्हीं—दूल्हा भाई, उनका मतलब तो यह है कि वह अपना ही जैसा सब को समझते हैं कि क्या मजाल जो दो घड़ी आराम भी करलें । यह चीज रख वह उठा, यह झाड़, वह झाड़ । बस दिन भर यही सब किया करते हैं ।

पत्नी—घर इसी तरह बनता है । हमारे यहाँ की तरह थोड़ी कि यह देखो महीनों से यह मुँआ लोटा टपक रहा है, अब तो निगोड़ा मारा फ़ौवारा होगया है अच्छा ख़ासा । कहते-कहते ज़बान थक गई कि क़लई-गर को देकर मिस्सी जोश करादो ।

पति—अब शिकायतों के दफ़्तर खोल के बैठोगी या सौदा बताओगी लाने के लिए ? ये शिकायतें तो जिन्दगी भर हैं । खुदा मुझे मौत भी तो नहीं देता ।

पत्नी—लो देखलो, यह है ज़बान ।

अज़ीज—तौबा, तौबा !

नन्हीं—नौज बीवी ।

पति—यानी आप हज़रात के नज़दीक भी क़ुसूरवार हूँ तो मैं ही ? सच है घुटने पीठ ही की तरफ़ झुकते हैं । अच्छा साहब, मेरा ही क़ुसूर

है, मैं तो खतावार हूँ। गोली मार दीजिये आप सब मिलकर। इतवार तो ग़ारत कर ही दिया और मैं तो अब रात को भी जो सो जाऊँ तो जो चोर की सजा वह मेरी।

अजीज़—भाई साहब, आपको मालूम है कि इस वक़्त आपको ग़ुस्सा क्यों आ रहा है।

पति—जी हाँ, मालूम है। मैं घास खा गया हूँ इसलिए आ रहा है। दूसरे मैं आपकी तरह का फ़रिश्ता नहीं हूँ, इन्सान हूँ।

अजीज़—जी नहीं, आपको ग़ुस्सा इसलिए आ रहा है कि एकदम से सब काम आज ही आप पर पड़ गया है। अगर हफ़्ता भर थोड़ा काम आप करते रहते तो आज यह बार न होता। और मेरी तरह आज आपको भी छुट्टी होती।

पत्नी—नहीं, रोज तो यह होता है कि दफ़्तर से आये और थक कर पड़ रहे। अब क्या मजाल जो उनको कोई उठाले किसी काम के लिए। इस मुँए इतवार का इन्तेज़ार करती हूँ जो आज है और यह आफ़त मचाये हुए हैं।

पति—भई मैं अपना सर पीट लूँगा। आखिर आफ़त क्या मचाई है मैंने? यूँ बदनाम करना है तो दोनों से क्या कह रही हो, ढिंढोरा पीटो शहर में। इतवार मेरा ग़ारत हुआ या तुम्हारा? तुम्हारा क्या है तुम्हारे काम तो हो ही जायेंगे। अलबत्ता मेरे सब काम गये अब सात दिन के लिए।

अजीज़—यानी आपके भी कुछ काम थे अभी?

पति—देख रहे हो मेरी सूरत, रीछ होने के क़रीब पहुँच गया हूँ। उस इतवार को बेगम साहब का हुक्म हुआ था कि खालू अब्बा के यहाँ चलो, लिहाज़ा हजामत नदारद। आज का इतवार यूँ जा रहा है। ग़ुस्लखाने की ज्यारत पन्द्रह दिन से नहीं हुई है। यूँ ही कपड़े बदल

लेता हूँ इरादा था कि आज जरा सिनेमा देखूँगा, मगर ये तमाम बातें होती हैं मुक़द्दर से।

नन्हीं—दूल्हा भाई की भी बातें सचमुच······[हँसती है।]

पति—हँस रही हो नन्हीं ? मैं सच कह रहा हूँ कि इस जिन्दगी से तो मौत बेहतर है, फिर तुम कहोगी कि···

अज़ीज़— भाई साहब, हँसी की तो बात ही है आपने जो मसायब अपने बयान किये हैं, उनसे कलेजा शक़ ज़रूर होता है मगर सवाल यह है कि उसकी जिम्मेदारी बाजी पर क्यूँकर हुई ? क्या वही आपकी हजामत भी बना दिया करें ?

पति—भई, तुम्हारी यही हठधर्मी जहर लगती है। हजामत न बना दिया करे मगर मुहलत तो दिया करें मुझ बदनसीब को।

पत्नी—और तो जैसे तुम्हें पकड़े बैठी ही रहती हूँ।

अजीज़—न, न, न इसको यूँ समझिये कि देखिये मैं भी सरकारी मुलाजिम हूँ, मगर हजामत बनाता हूँ और सिर्फ़ इतवार को नहीं बल्कि रोज बनाता हूँ। इसके अलावा यह तो आपको मालूम ही है कि मेरे बीवी भी है और आपकी बुआ से सब वही उज्र हैं जो आपको हो सकते हैं, मगर······

पति—भई, कह तो दिया कि मैं ख़तावार हूँ, कमीना हूँ, मरदूद हूँ। अब बख़्श भी दो मुझको। यानी आप सब-के-सब एक तरफ़ हो गये गोया ख़ता है तो बस मेरी।

नन्हीं—नहीं दूल्हा भाई, बात यह है कि आप इनकी तरह अगर वक़्त पर काम किया करें यो इतवार का दिन आपके लिए ऐसा मसरूफ़ दिन न हो।

पत्नी—ऐ, वक़्त पर काम, वक़्त पर काम तो यह होता है कि दस बजे रात को दाढ़ी बनाने का ख़याल आया तो बना डाली नहीं तो बढ़ रही है हफ़्तों। कोई पूछने ही वाला नहीं। सोने आये तो तमाम-तमाम

दिन सो लिये और नहीं सोये तो रात-रात भर ताशों के नज़् करदी। हद तो यह है कि खाने-पीने का होश नहीं है।

पति—मुझको खाने-पीने तक का होश नहीं है। अरे, अब क्यों मुँह खुलवाओगी तुम? मियाँ अज़ीज़, सुबह की चाय अभी तक नसीब नहीं हुई है।

नन्हीं—क्या सचमुच? क्यों आपा क्या अब तक चाय नहीं दी तुमने?

पत्नी—जरा इनसे यह पूछो कि किस वक़्त सोकर उठे हैं।

अज़ीज़—अगर भाई साहब, आप चाय के वक़्त के बाद सोकर उठे हैं तो आपको शिकायत का कोई हक़ नहीं है।

नन्हीं—नहीं वाह, यह भी कोई बात है? चाय तो हर सूरत में तैयार मिलनी चाहिये थी।

पति—ख़ुदा तुम्हारा भला करे। मगर मैं जो कहूँ साहब तो गुनहगार।

अज़ीज़—ख़ैर, यह आपकी ज्यादती है। आख़िर वह कब तक चाय दम किये बैठी रहतीं आपके लिए? और आपको देर में सोकर उठने का सबक़ आख़िर क्यूँ कर मिलता?

नन्हीं—ख़ैर, रहने दीजिये आपा ऐसे-ऐसे सबक़ अगर मैं देने पर तुल जाती तो आज आप भी यूँ ही फ़ंट होते।

पति—वह तो मैं पहले से ही कहता हूँ कि तुम में और तुम्हारी बहन में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है।

अज़ीज़—मगर साहब मैं इस मामले में बाजी का तरफदार हूँ।

पत्नी—ना भैया, मेरे तरफ़दार बनकर तुम इनसे दुश्मनी क्यों मोल लोगे?

नन्हीं—जनाब देखिये, याद आ गया मुझे। अगर सबक़ ही देना होता तो उस दिन जब रात को बारह बजे······

अज़ीज़—अरे अरे, यह क्या वाहियात है ? यानी हम यहाँ यह झगड़ा देख रहे थे या अपने झगड़े लेकर बैठ गये।

नन्हीं—बनावट की बातें रहने दीजिये अब। सचमुच भाई साहब फ़रिश्ता हैं कि, ग्यारह बजे तक चाय नहीं मिली और चुप हैं। एक आप हैं। ज़रा देर जो चाय में हुई तो कहने लगे कि मैं बाजी ही के यहाँ चाय पियूँगा। मेरा क्या है ऐंठ गये मेरी जूती से। अब पियो यहाँ चाय धरी है।

पत्नी—बड़ी बदतमीज हो तुम नन्हीं ! यह मियाँ से बातें हो रहीं हैं। तो क्या भैया तुमने सचमुच चाय नहीं पी ? मैं अभी बनाती हूँ तुम्हारे लिए।

नन्हीं—और मैं दूल्हा भाई आपके लिए एक प्याली बना लाऊँ।

पति—तुम क्यों तकलीफ़ करोगी बेटा। अफ़सोस एक बहन तुम हो और एक——हुँह।

अज़ीज़—मगर मुझको यह उम्मीद न थी कि यह ज़हर तुम यूँ उगलोगी। ख़ैर···

नन्हीं—लो, वह आया तो पहुँच भी गई। तो दूल्हा भाई मैं लाती हूँ चाय।

[जाती है।]

पति—कितनी शरीफ़ लड़की है।

अज़ीज़—क्या अख़लाक़ है बाजी का !

पति—भई, क़िस्सा असल में यह है कि ये दोनों बाअख़लाक़ और शरीफ़ हैं। क़ुसूर हम लोगों का है।

अज़ीज़—नहीं साहब, माननी पड़ेगी आपकी बात कि इतवार कभी हम लोगों को रास नहीं आ सकता।

अज़ीज़—सुबह से यही झक-झक थी घर पर। ग़म ग़लत करने

यहाँ आये चश्मे का बहाना लेकर तो यहाँ भी बेगम साहबा से आख़िर वक़्त न हो सका।

पति—(आवाज़ देकर) अरे छोड़ो चाय। यहाँ सब भाँडा फूट गया।

[दोनों बातें करती हुई आती हैं।]

नन्हीं—सवेरे से यही आफ़त है।

पत्नी—सुबह से यही झगड़ा है।

अज़ीज़—हम दोनों का आज इतवार है।

पति—ये दोनों सगी बहनें हैं।

[दोनों के क़हक़हे]

# मीर साहब की ईद

(गोला छूटने की आवाज़ और उसी के साथ एक आम शोरो-ग़ुल और 'चाँद हो गया चाँद हो गया !' की सदाएँ। यकायक मीर साहब की मुलाज़िमा दौड़ी हुई आती है और मीर साहब को ख़बर देती है।)

गुलशन—मियाँ, मियां तसलीम ! बीवी, बीवी तसलीम !

मीर साहब—क्या चाँद हो गया ?

गुलशन—जी हाँ मियाँ, मैने ख़ुद देखा बहुत बारीक है। मियाँ तसलीम !

पत्नी—कहाँ है, किधर है ? मुझे तो सूझता नहीं।

मीर साहब—अरी गुलशन, ज़रा मेरी ऐनक तो देना।

गुलशन—लीजिए मियाँ, वह है खजूर के ऊपर मस्जिद के दोनों मीनारों के बीच में।

मीर साहब—लाहौल वला क़ूवत, यह तो पढ़ने की ऐनक है इससे चाँद क्या दिखाई देगा !

पत्नी—हाँ हाँ, मैंने देख लिया। गुलशन, ज़रा नन्हें को ला मैं उसकी सूरत देखूँगी।

गुलशन—बीवी, नन्हें मियाँ को तो घसीटे ले गया है चाँद दिखाने। आप मेरी सूरत देख लीजिये ना।

बीवी—चल, दूर हट यहाँ से ! ऐ जी सुनते हो, ज़रा तुम हँसती हुई सूरत बनाओ तो मैं तुम्हारा मुँह देखूँ।

मीर साहब—यानी मैं। वल्लाह है कि मैं तो यूँ ही हँसमुख हूँ, तुम शौक़ से मेरी सूरत देखो। मगर मुझे भी तो चाँद दिखाओ।

पत्नी—देखो जी मैंने चाँद देखकर तुम्हारा मुँह देखा है। देखूँ यह महीना कैसा भागवान गुज़रता है।

मीर साहब—मगर वह चाँद है किधर ?

पत्नी—वह देखो, उँगली की सीध में खजूर के बिल्कुल ऊपर।

मीर साहब—अच्छा, हाँ ठीक है। मगर वह खजूर किधर है?

पत्नी—बस, तो तुम देख चुके चाँद।

[लड़का दौड़ता हुआ आता है।]

लड़का—अब्बा, अब्बा! अम्मा, अम्मा!

पत्नी—लो मेरा चाँद भी आ गया।

लड़का—अम्मा, मैंने चाँद देख लिया। अब्बा, वह बहुत दूर है। आपने देखा, वह देखिये।

मीर साहब—अरे तो तुझ ही को क्यों न देख लूँ, तू भी चाँद है।

पत्नी—मेरा चाँद!

लड़का—तो अम्मा, कल ईद है ना?

पत्नी—हाँ मेरे चाँद, कल ईद है। मेरा चाँद ईदगाह जायेगा, वहाँ से खिलौने, मिठाइयाँ और न मालूम क्या-क्या लायगा।

मीर साहब—मगर बेगम, मेरे कपड़े-वपड़े अभी निकाल कर रख दो। ऐसा न हो कि देर हो जाय।

लड़का—और अम्मा मेरे कपड़े भी।

मीर साहब—हाँ साहब, मेरे बेटे के कपड़े सबसे पहले निकालो।

गुलशन—बीवी, मैं जरा अपना दुपट्टा रँग लूँ।

पत्नी—हाँ और क्या? तेरी ईद सबसे ज्यादा जरूरी है।

गुलशन—ऐ वाह बीबी, तो क्या मेरे दिल ही नहीं है?

मीर साहब—नहीं साहब, है क्यों नहीं। सबसे बड़ा तो तेरा ही दिल है। मगर सुन तो सही नेकबख्त, कहीं मेरे नहाने का पानी तैयार करने में देर न कर देना। और देखो बेगम, मुझको जरा जल्दी उठाना।

पत्नी—तुम उठ चुके सवेरे।

मीर साहब—भला कोई बात भी हो, आखिर क्यों न उठूँगा मैं। अच्छा तो यूँ सही कि मैं तुमको उठाऊँगा।

पत्नी—कहीं उठाया न हो। मैं न उठाऊँ तो शायद तुम दो-तीन दिन तक सोकर न उठो।

मीर साहब—भई वल्लाह, यह भी एक ही रही। मैं दिन चढ़े तक सोता जरूर हूँ। मगर कल ईद भी तो है।

पत्नी—अच्छा देखूं, तुम मुझे उठाते हो या मैं तुमको।

मीर साहब—रही सेर-सेर भर इमरतियों की शर्त। मगर नहाने का पानी, कपड़े और जूता वग़ैरा सब तैयार रहे सवेरे।

लड़का—और अम्मा मेरा जूता ?

मीर साहब—अरे हाँ बेटा, जरा मुझे तो अपना नया जूता दिखादे।

लड़का—ले आऊँ उठाकर ?

मीर साहब—और नहीं तो क्या। मैंने देखा ही नहीं अपने बेटे का जूता।

पत्नी—जा, बेटा जा। लाके दिखादे अपने अब्बा को।

मीर साहब—लल्लू की मा, कहीं ऐसा न हो कि यह कमबख्त गुलशन सुबह पानी तैयार न करे। जरा तुम खुद ताकीद कर देना। और हाँ, मेरी वह जामावार की नई शेरवानी तो तुम इसी वक़्त निकाल कर रखदो।

पत्नी—अब इस वक़्त तो मुझसे कुछ न होगा। रोजा खोल के यूँ ही हाथ-पैर सनसना रहे हैं।

मीर साहब—कहीं सुबह यह न कहो कि हाथ-पैर फुलाये देते हो। बात यह है कि जरा जल्दी ही जाना चाहिये।

पत्नी—हाँ, हाँ सवेरे जब सब चीजें तुमको तैयार न मिलें तब ही कहना। मैं तो कहती हूँ कि तुम्हारा इतने सवेरे उठना ही मुश्किल है।

मीर साहब—फिर वही। यानी मैं क्या इतना भी नहीं जानता कि कल ईद है। जरा तड़के उठना चाहिये।

लड़का—अब्बा, यह देखिये जूता। इसमें मैंने डोरी डाल दी है।

मीर साहब—भई वाह वाह ! मगर सवेरे जल्दी से उठकर तैयार भी हो जाना नहीं तो ईदगाह कैसे चलोगे ?

पत्नी—वह तो यूँ ही अँधेरे मुँह उठता है।

मीर साहब—मगर इसे भी ज़रा जल्दी तैयार कर देना। ऐसा न हो कि मेरे साथ ईदगाह न जा सके।

पत्नी—अच्छा, अच्छा तैयार हो जायगा। मगर अब इससे कहो कि आज जल्दी सो रहे, तड़के उठना भी तो है।

मीर साहब—मैं तो तुमसे भी यही कहता हूँ।

पत्नी—अच्छा, ख़ैर, तुम सो रहो। मैं भी दरवाज़ा बन्द कराके लेटती ही हूँ।

मीर साहब—मगर गुलशन से ज़रा सवेरे उठने की ताकीद कर देना और घसीटे से भी कहलवादो कि कल ईद है, ज़रा तड़के तैयार हो जाये। बच्चे का साथ होगा, उसे भी तो साथ ले जाऊँगा ना।

पत्नी—अच्छा, मैं सबसे कहलवा दूँगी। तुम अब लेट जाओ।

**[थोड़ा अवकाश, फिर कुछ खर्राटों की आवाज़ें। रात्रि का वातावरण, पहरेदारों की आवाज़ें, कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें। सुबह के समय मुर्ग़ा बाँग देता है और मीर साहब की पत्नी उनको जगाती हैं।]**

पत्नी—ऐ मैं कहती हूँ कि अब भी उठोगे या बरस-बरस के दिन भी बस पड़े हुए ऐंढा करोगे। रात को तो इतनी तैयारियाँ थीं और इस वक़्त उठने का नाम ही नहीं लेते।

मीर साहब—लाहौल वला क़ूवत। क्या ख्वाब था। सोना बुरबार कर दिया है। कैसा अच्छा ख्वाब था।

पत्नी—ऐ चूल्हे में गया तुम्हारा दुपहरिया का ख्वाब मुआँ। अब ईदगाह भी जाओगे या बस पड़े ही रहोगे ?

मीर साहब—यानी ईदगाह ? भई इस क़दर तड़के, आख़िर होगा

कौन ? अभी तो कोई सोकर भी न उठा होगा। तुम तो वल्लाह है कि लल्लू की मा कमाल करती हो।

पत्नी—तुम ही ने तो कहा था कि तड़के उठा देना।

मीर साहब—मगर मैंने यह कब कहा था कि एक सिरे से सोने ही न देना, और आधी रात को उठा देना।

पत्नी—साढ़े सात बजने को आये, तमाम धूप फैल रही है यह। तुम्हारे यहाँ होगी आधी रात। अच्छा अब उठो।

[लड़का दौड़ता हुआ आता है।]

लड़का—अम्मा, क्या अब्बा अभी तक नहीं उठे ?

मीर साहब—अरे तू, भई उठ बैठा इतनी जल्दी।

लड़का—मैं तो नहा भी चुका। मैंने तो कपड़े भी बदल लिये। नया जूता भी पहन लिया। नई टोपी भी पहन ली।

मीर साहब—अरे, अरे अरे! देखूँ तो तुझे, और क्या तू इतने सवेरे नहाया है ? क्या लल्लू की मा इतने सवेरे तुमने इसे पानी से नहलाया है ?

पत्नी—नहीं, चाय से नहलाया है। अल्लाह न करे कि वह तुम्हारा ऐसा हो कि पानी से भागे और नहाने से डरे।

लड़का—अब्बा, तो अब चलिये न ईदगाह, बड़ी देर हो गई।

मीर साहब—नहीं बेटा, अभी तो बहुत जल्दी है। ज़रा धूप और फैल जाये तो मैं लिहाफ़ से निकलूँ।

लड़का—सब लोग ईदगाह जा रहे हैं।

मीर साहब—जाने दे बेटा, उन सबको, ईदगाह में बैठकर ये सब सर्दी खायेंगे।

पत्नी—अच्छा तो अब उठो भी। तुमको भी तो तैयार होना है।

मीर साहब—हाँ साहब, उठना तो है ही। मगर क्या ईद की खुशी में आज हुक़्क़ा भी ग़ायब ?

पत्नी—हुक़्क़ा मुआँ तो नहीं मालूम कबसे भरा हुआ रखा है जल भी गया होगा।

मीर साहब—[हुक़्क़ा पीकर] ऐ, यह तो मुद्दतें हुई जल चुका। शायद रात ही को भरवाकर तुमने रख दिया था।

पत्नी—अच्छा तो अब दूसरा हुक़्क़ा भरवाये देती हूँ, मगर तुम अब उठो।

[लड़का खिड़की के बाहर झाँककर देखता है और मीर साहब के कमरे में ट्राफ़िक की आवाजें आती हैं। लारियाँ, मोटरें, ताँगे सब ईदगाह को ओर जा रहे हैं। ताँगे वाले और लारी वाले सब शोर मचा रहे हैं: 'ईदगाह एक सवारी! ईदगाह एक सवारी। दो आने सवारी!' लड़का वहीं से कहता है।]

लड़का—देखिये, सब चले जा रहे हैं। वह शद्दू के अब्बा शद्दू को लेकर गये। और हमीद भी जा रहा है। सब जा रहे हैं। अब्बा अब उठिये।

पत्नी—अब मैं खेंचती हूँ तुम्हारा लिहाफ़।

मीर साहब—देखो बेगम, तुम्हें मेरी क़सम। यह गजब न करना। लिहाफ़ से रफ़्ता-रफ़्ता निकलने का आदी हूँ, वर्ना अब तक फ़ालिज में मर चुका होता।

पत्नी—दूर पार! क्या मुई ज़बान है, बरस-बरस के दिन भी यह बदशुगनी।

[फिर कुछ ट्राफ़िक की आवाज. लड़का फिर कहता है।]

लड़का—वह तीन मोटर गये। अब्बा, उठिये अब।

मीर साहब—अरे तो जाने दे मोटरों को, तू क्या ठेकेदार है सबका? बहुत से लोग रात ही को चले गये होंगे ईदगाह।

पत्नी—बस तुम पड़े-पड़े बातें बनाये जाओ और बिस्तर न छोड़ो। जा चुके तुम ईदगाह।

मीर साहब—यह कैसे हो सकता है ? अच्छा यह बताओ कि लिहाफ़ के बाहर मौसम कैसा है ?

पत्नी—चलो हटो न, सर्दी न कुछ। अब तुम सर्दी को देखोगे तो जा चुके।

मीर साहब—खैर, जाना तो है ही मगर सर्दी का खयाल भी करना ही पड़ता है।

पत्नी—अच्छा तो तुम लेटे हुए सर्दी का ख़याल किये जाओ।

मीर साहब—नहीं साहब, मैं उठता तो हूँ ही। मगर वह हुक़्क़ा क्या हुआ आख़िर ?

पत्नी—[आवाज़ देती है] गुलशन, अरी ओ गुलशन !

*गुलशन—ला रही हूँ बीबी हुक़्क़ा।*

मीर साहब—बस हुक़्क़ा आया नहीं कि मैं उठा। मुझे भी अब कोई देर है।

गुलशन—लीजिये हुक़्क़ा। अरे मियाँ तो अब तक लेटे हैं और ग़ुसलख़ाने में पानी रखा हुआ ठण्डा हो रहा है।

मीर साहब—अरे तो क्या नेकबख़्त तूने यह समझा था कि मैं इस सर्दी में इस वक़्त अँधेरे मुँह उठकर नहाऊँगा।

पत्नी—अच्छा तो क्या आज ईद के दिन भी न नहाओगे ? ऐ मैं कहती हूँ कि तुमको आख़िर हुआ क्या है ?

मीर साहब—भई यह कौन कहता है कि नहाऊँगा नहीं, मगर इस सर्दी में और इस वक़्त बेगम तुम ख़ुद ग़ौर करो। [हुक़्क़ा पीते हैं।]

पत्नी—अच्छा नहाओ या न नहाओ मैं कुछ नहीं जानती। तीन महीने से नहाये नहीं थे, मैं समझती थी कि ईद के बहाने नहा भी लेंगे।

मीर साहब—हाँ साहब, नहाऊँगा। और ज़रूर नहाऊँगा। मगर इसमें क्या हर्ज है कि ईदगाह से वापस आकर ज़रा इत्मिनान से दिल लगाकर नहाऊँगा।

पत्नी—और बग़ैर नहाये तुम ईदगाह भी हो आओगे ?

मीर साहब—यह तो ठीक है, मगर देर भी तो होगी।

पत्नी—तोबा है अगर आज ज़रा जल्दी नहालोगे तो तुम्हारी इज़्ज़त में बट्टा लग जायगा।

[लड़का फिर खिड़की के पास से कहता है।]

लड़का—सब जा चुके, अब कोई नहीं जा रहा है।

मीर साहब—तो फिर अब हम जायेंगे अपने बेटे को लेकर।

पत्नी—अच्छा उतारो अब लिहाफ़ नहीं तो मैं अब खेंचती हूँ।

मीर साहब—लिहाफ़ तो कब का उतर चुका होता, मगर इस सर्दी में नहाने का ज़िक्र करके तुमने लिहाफ़ को और मेरे जिस्म से चिमटा दिया है।

पत्नी—अच्छा तो लो। [लिहाफ़ खेंचती है।]

मीर साहब—अरे, अरे, अरे, अरे। तुम्हें वल्लाह, तुम्हें मेरी क़सम। यह न करना वल्लाह है कि सर्दी लग जायेगी। छींकें आने लगेंगी। मैं खुद अभी उतारे देता हूँ तुम छोड़ो तो सही।

पत्नी—अच्छा तो उठो अब तुम खुद।

मीर साहब—बस अभी उठा। ऐसे मज़े में इस वक्त हुक़्क़ा आ रहा है कि छोड़ने को जी नहीं चाहता।

पत्नी—ऐ आग लगे इस मुए हुक़्क़े को।

मीर साहब—हुक़्क़ा और आग भई वाह वाह वाह ! क्या बात कही है ! चश्मे-बद दूर ये ही तो बातें हैं तुम में लल्लू की माँ।

पत्नी—देखो, मैंने कह दिया है कि तुम इस वक़्त मुझको जलाओ नहीं।

मीर साहब—अहा हा ! हुक़्क़ा-आग और फिर जलाओ नहीं। वल्लाह है लल्लू की मा तुम तो शाइर होती जाती हो।

लड़का—[ठुनकता है] अब्बा, ऊँह, हुँह, हुँह।

पत्नी—बरस-बरस के दिन बच्चे को रुलवा रहे हो। ना मेरा चाँद, तू अपना दिल न कुढ़ा। यह न गये तो मैं तुझको घसीटे के साथ भेज दूँगी।

मीर साहब—भई वल्लाह है कि क्या तरकीब सोची। बहुत खूब, अगर यही है तो फिर मुझको इस सर्दी में इस क़दर नावक़्त क्यों लिहाफ़ से निकालोगी।

पत्नी—वह तो तुम खुदा से चाहते हो कि किसी तरह इस वक़्त ईदगाह का जाना टल जाय। मगर मैंने भी कह दिया है कि अगर आज नन्हे को लेकर ईदगाह न गये तो अच्छा न होगा। अल्लाह रखे जिसका बाप हो वह नौकरों के साथ ईदगाह जाये।

मीर साहब—तो यह किसने कहा है कि ईदगाह न जाऊँगा; अलबत्ता ज़रा देर-सवेर का ख़याल है।

पत्नी—देख रहे हो कि वह खड़ा हुआ कैसा बिसूर रहा है।

मीर साहब – वह तो है गधा, मैं बस उठा अब।

पत्नी—बस उठा, बस उठा। नौ बजने को आये और इनका 'बस उठा' है कि किसी तरह ख़त्म ही नहीं होता।

मीर साहब—अच्छा तो यह बताओ कि लिहाफ़ उतारकर उठने की क्या ज़रूरत है। लिहाफ़ ओढ़कर क्यों न उठूँ।

पत्नी—और लिहाफ़ ओढ़ कर नहा भी लेना।

मीर साहब—हा-हा-हा! तुम तो खुश मज़ाक़ी कर रही हो और मैं देखता हूँ कि सर्दी वाक़ई बहुत है।

पत्नी—हाँ बस, एक इनके लिए सर्दी है और तो कोई आदमी ही नहीं है।

लड़का—ऊँह-उहँ-हुँह-हुँह!

पत्नी—ना मेरे चाँद ना, बरस-बरस के दिन रोना नहीं।

मीर साहब—इसको सर्दी लग रही होगी। खिड़की खोले हवा में खड़ा है।

पत्नी—ना कहीं सर्दी लग रही है ; ईदगाह जाने के लिए बेक़रार है।

मीर साहब—कमाल करती हो बेगम तुम, यानी अभी लिहाफ़ का ज़रा-सा कोना हट गया था तो मालूम हुआ कि बर्फ़ का तूफ़ान लिहाफ़ के अन्दर घुस आया और तुम कहती हो कि इसको सर्दी नहीं लग रही है। इसे जरूर सर्दी लग रही है। क्यों बेटा लग रही है ना ?

लड़का—सर्दी कहाँ है जो लगे ? आप तो चलते ही नहीं ईदगाह। ऊँ, ऊँ, ऊँ।

पत्नी—तुम इस वक़्त इसको रुलाओगे और देख लेना कि अगर आज वह रोया तो मैं भी ज़मीन-आसमान एक कर दूँगी। वाह यह भी भला कोई बात है ?

मीर साहब—अरे साहब, तुमको तो जैसे कुछ इस वक़्त मुझसे ज़िद-सी हो गई है। अच्छा लाओ ज़रा कोई चादर और दो तो उठूँ मैं।

पत्नी—तौबा है, लो चादर भी लो, मगर तुम उठ तो चुको किसी तरह।

मीर साहब—[उठते हुए] उफ़, उफ़—उफ़ ! किस क़यामत की सर्दी है। वल्लाह है कि दाँत से दाँत बजे जाते हैं ?

पत्नी—अरे और क्या न दिसंबर न जनवरी, और इनके दाँत अभी से बजने लगे।

मीर साहब—तो गोया मैं झूठ बोल रहा हूँ। तुमको क्या मालूम कि नक़ली दाँत नवम्बर ही से बजना शुरू हो जाते हैं।

पत्नी—अच्छा तो अब बजा भी चुको अपने दाँत और किसी तरह तैयार तो हो जाओ।

मीर साहब—वल्लाह है कि लल्लू की मा अगर दो-तीन दिन इसी सर्दी में इतने ही तड़के ईदगाह जाना पड़े तो मैं अकड़ कर रह जाऊँ।

पत्नी—हाँ हाँ, तुम ठीक कहते हो। अब कौन तुमसे सर खपाये ? तुम किसी तरह जल्दी से तैयार हो जाओ।

मीर साहब—अरे साहब, अब तैयारी में क्या देर ह लिहाफ़ से तो निकल ही चुका हूँ।

पत्नी—मगर मैं तो तुम्हें घर से भी निकालना चाहती हूँ इस वक़्त।

मीर साहब—भई, इस वक़्त पर तो एक शेर याद आया है। लल्लू की मा आना ज़रा इधर—

निकलना ख़ुल्द से आदम का सुनते आये थे लेकिन
बहुत सर्दी में अपने गर्म बिस्तर में से हम निकले

पत्नी—चलो हटो। क्या अच्छे मालूम हो रहे हैं इस वक़्त शेर सुनाते हुए। वह मासूम इस सर्दी में तड़के से नहा-धोकर तैयार खड़ा है और तुम हो कि किसी तरह जाने का नाम ही नहीं लेते।

मीर साहब—ऐं, यह तो सचमुच खड़ा हुआ बिसूर रहा है। अच्छा साहब मैं तैयार हो गया। समझो कि बिल्कुल तैयार हो गया।

[मीर साहब सर्दी में हाँपते-काँपते चले जाते हैं।]

पत्नी—[आवाज़ देती है] अरी गुलशन, ज़रा देख ग़ुसलख़ाने में सब ठीक है। मियाँ नहाने जा रहे हैं।

मीर साहब—[लौटते हुए] नहीं साहब, नहा तो सकता ही नहीं इस वक़्त सिर्फ़ मुँह-हाथ धोने का इरादा है नहाना इस सर्दी में मेरे बस का नहीं।

पत्नी—फिर वही। तुम जा चुके ईदगाह। और ले जा चुके इसको।

मीर साहब—तो साहब, मैं कैसे इस वक़्त नहाकर जान देदूँ ?

पत्नी—और बग़ैर नहाये मैं ईदगाह जाने न दूँगी। वाह यह भी कोई बात है।

मीर साहब—तो फिर इसके माने ये हुए कि ईदगाह जाना मुलतवी।

पत्नी—मगर तुम नहाओगे नहीं?

मीर साहब—यह मैंने कब कहा, किससे कहा? मेरा मतलब यह है कि मैं ईदगाह से वापस आकर नहा लूँगा। [गुलशन आती है।]

गुलशन—बीवी, तीसरी मरतबा ग़ुसलख़ाने में पानी रखा है। अब यह भी ठण्डा न हो जाये।

मीर साहब—तो मैं इस वक़्त जल्दी से मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाऊँ। आख़िर तुम नहाने की ज़िद क्यों कर रही हो?

पत्नी—और तुम्हें यह क्या ज़िद कि ईद के दिन भी न नहाओगे?

मीर साहब—फिर वही! अरे साहब मैं ज़िद नहीं कर रहा हूँ। बल्कि मजबूरी है, सर्दी तो देखो किस क़यामत की है। इस सर्दी में नहाना अरे तौबा! तमाम जिस्म काँप रहा है।

लड़का—अब्बा मैं भी तो नहा लिया।

मीर साहब—अरे तेरा क्या है, तू तो पानी का कीड़ा है। हर हफ़्ते नहाता है। मगर मुझे तो इस वक़्त देर होगी। पहले कपड़े इस सर्दी में उतारूँ, फिर नहाने की हिम्मत करूँ। फिर तीन महीने का मैल छुड़ाऊँ। ना बाबा, मुझसे तो यह न होगा।

बीवी—तो साफ़ कह दो ना कि तुम न नहाओगे।

गुलशन—बीवी, पानी ठण्डा हो रहा है।

पत्नी—चूल्हे में गया पानी और भाड़ में गई तू।

गुलशन—ऐ वाह बीवी, बरस-बरस के दिन नौज मैं भाड़ में जाऊँ। आज तो ये कोसने न पड़ते।

मीर साहब—यानी सर्दी में भी भाड़ में जाना कोसना है ? मेरे दिल से पूछ कि मुझसे नहाने को कहा जा रहा है और मैं चुप हूँ।

लड़का—अम्मा, ऊँह, उँह, उँह।

पत्नी—क्या ठुन-ठुन लगा रखी है। तो क्या मैं तुझको लेकर घर से निकल जाऊँ ?

मीर साहब—अरे साहब, तो मैं कह तो रहा हूँ कि मुँह-हाथ धोकर कपड़े बदल लूँ और इसको लेकर ईदगाह चला जाऊँ।

पत्नी—मैं तो कयामत तक बग़ैर तुम्हारे नहाये तुम्हारे साथ न जाने दूँगी।

मीर साहब—भई वल्लाह है कि आजिज़ कर रही हो तुम। अरे साहब, नहाने के नाम से इस वक़्त मेरा दम निकल रहा है। मैंने तुमसे कह दिया कि मैं आकर जितना कहोगी नहालूँगा।

पत्नी—खाने के बाद गरम मसाला फांकने वाले तुम्हारे ऐसे ही तो होते हैं।

मीर साहब—क्या मतलब ? यानी तुम चाहती हो कि मैं नहा जरूर लूँ चाहे मेरा कुछ भी हाल हो।

पत्नी—नहाओ या न नहाओ, अब मैं कुछ नहीं कहूँगी, सवेरे से भेजा खाली कर रखा है। रात को कैसी तैयारियाँ थीं और कलेजे में ठण्डक पड़ गई थी।

[सड़क पर फ़क़ीरों की सदाएँ, सवारियों की चहल-पहल।
लड़का खिड़की में से झाँकता है और कहता है।]

लड़का—अभी तक लोग जा रहे हैं। उहूँ, हुँह, उहूँ।

पत्नी—कैसा बिलख-बिलखकर मेरा बच्चा कह रहा है। गुलशन जरा बाहर जा और मसीटे से कह कि नन्हें मियाँ को ईदगाह ले जाये।

गुलशन—बीवी, मसीटे तो बड़ी देर हुई ईदगाह चला भी गया।

मीर साहब—चला गया, आख़िर इतनी जल्दी क्यों चला गया ? यानी मैं नहीं गया और वह चला गया।

पत्नी—न जाता तो करता क्या ? क्या तुम्हारे लिये वह भी नमाज़ छोड़ देता ?

लड़का—[रोता है] घसीटे भी गया, ईं-ईं-ईं।

पत्नी—रुला दिया ना, अब तो चैन पड़ा। ईद के दिन मासूम बच्चे के आँसू देख लिये। बस अब ख़ुश हुए होंगे।

मीर साहब—अच्छा लाओ मेरे कपड़े, मैं इसको लेकर अभी जाता हूँ।

पत्नी—मैं तो अब बग़ैर नहाये कपड़े भी न दूँगी।

मीर साहब—वल्लाह है कि यह ज़बरदस्ती है।

पत्नी—अब जो भी तुम समझो, मगर नहाये बग़ैर कपड़े न दूँगी चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाये।

मीर साहब—इस वक़्त पानी से नहाना वल्लाह है कि ख़ुदकशी है ख़ुदकशी। मगर जाता हूँ मैं ग़ुसलख़ाने में।

पत्नी—अगर नहाना है तो नहाओ जल्दी। पौने दस बजे हैं, दस बजे नमाज़ होती है ईदगाह में।

मीर साहब—जा तो रहा हूँ साहब, वल्लाह है कि सूली पर जाना है।

**[मीर साहब बड़बड़ाते हुए चले जाते हैं और पत्नी बच्चे को समझाती है।]**

पत्नी—बेटा, अब न रो। तुम देखो अभी वह नहाकर आयेंगे और तुमको ले जायेंगे। अभी तो देर है।

लड़का—अब्बा बड़ी देर में नहायेंगे।

मीर साहब—[ग़ुसलख़ाने ही से पुकार कर] अरे मैंने कहा लल्लू की माँ सुनतीं हो।

पत्नी—कहो क्या है, अब कोई नया शिगूफ़ा खिला ?

मीर साहब—मैंने कहा कि तुम्हारी क़सम हिम्मत नहीं हो रही है और मेरे लिए इस वक़्त नहाना बहुत मुश्किल है। कहो तो मुँह-हाथ धोकर आ जाऊँ ?

पत्नी—तौबा है, ख़ुदा न करे कि तुम्हारा ऐसा जिद्दी कोई गदुंवा हो।

मीर साहब—अरे साहब, ग़ौर तो करो कि पानी से नहाना है और कपड़े उतारकर नहाना है। मुझसे कपड़े ही नहीं उतर रहे है, नहाने का क्या जिक्र।

पत्नी—नाक में दम कर दिया। ईद क्या आई मेरे लिए अजाब बनकर आई। सवेरे से कुत्ते की तरह भौंक रही हूँ, मगर वही मुर्ग़े की एक टाँग।

मीर साहब—मैं पूछता हूँ कि आखिर मुँह-हाथ धो लेने में क्या हर्ज है। तुम क्या मुँह-हाथ धोने को कुछ कम समझती हो ?

[गुलशन आती है।]

गुलशन—बीवी, देखिये सिवैयों को भून तो लिया है मगर क़िवाम में आप मिला दें।

पत्नी—चूल्हे में गईं मुई सिवैयाँ और भाड़ में गया क़िवाम !

गुलशन—ऐ हैं बीवी, मैंने कुछ कहा भी था आप-ही-आप गुस्सा आ रहा है ? बरस-बरस के दिन···।

पत्नी—जब मेरे बच्चे को ईद के दिन रुलाया गया है तो कैसी सिवैयाँ और कैसा कुछ।

गुलशन—ऐ बीवी तो क्या मैंने रुलाया है। मैंने तो एक बात पूछी थी और आप मुझ पर बरस पड़ीं।

पत्नी—ये त्योहार बच्चों के होते हैं ? कैसा सवेरे से ख़ुश-ख़ुश फिर रहा था और अब कैसा मेरा लाल रो रहा है !

लड़का—[रो रहा है] ऊँ-ऊँ-ऊँ, ईं-ईं-ईं।

[बाहर से घसीटे सलाम करता है ।]

घसीटे—बीवी, तसलीम !

बीवी—कौन ? घसीटे ।

घसीटे—जी हाँ, अल्लाह मुबारक करे यह बरस-बरस का दिन !

पत्नी—और आखिर तुम ग़ायब किधर हो गये थे ? नन्हें को ईदगाह भेजना था, वह बिलख-बिलख कर रह गया ।

घसीटे—बीबी, मैं तो ईदगाह ही गया था । बड़ी देर तक मियाँ का इन्तेज़ार किया, जब देर होने लगी तो चला गया ।

पत्नी—तो क्या नमाज़ हो गई ?

घसीटे—जी हाँ, वहीं से तो आ रहा हूँ ।

मीर साहब—[ग़ुसलख़ाने से] यह कौन है, क्या घसीटे है ?

गुलशन—जी हाँ मियाँ घसीटे है । ईदगाह से आया है नमाज़ पढ़ कर ।

मीर साहब—[ग़ुसलख़ाने से] अरे साहब, सुनती हो ? मैंने कहा अब तो नहाना यूँ भी बेकार ही है । अगर कहो तो निकल आऊँ अब ?

पत्नी—देखो जी मैंने कह दिया है कि अब तक तो मैं चुप रही, मगर अब जो तुम बोले तो सिर पीट लूँगी अपना । समझे कि नहीं ?

मीर साहब—[ग़ुसलख़ाने से निकलते हुए] अच्छा साहब मैं चुप—

गुस्सा है मेरे यार को जल तू जलाल तू
आई बला को ऐ मेरे अल्लाह टाल तू

पत्नी—हाँ-हाँ, बला कहो मुझको । मैं तो बला हूँ ही । मगर यह बला अब तुम्हारे सिर से टलने वाली नहीं है ।

मीर साहब—भई वल्लाह, यह भी एक ही रही । यानी किस नामाक़ूल ने तुमको बला कहा है ? तौबा करो लल्लू की माँ !

पत्नी—चलो रहने दो । अब इस लीप-पोत करने को । वह तो मैं

जानती हूँ कि तुम मुझको अपने सर की बला समझते हो। मगर मैं कहती हूँ कि आखिर इस मासूम का क्या क़ुसूर था जिसको आज बरस-बरस के दिन आठ-आठ आँसू रुलाया गया है। मेरे बच्चे का रोना तुमसे देखा कैसे गया······।

मीर साहब—अरे साहब, रोने ही की वजह से तो मैंने नहाने की हिम्मत कर ली थी। तुम्हारे सामने गुसलखाने तक गया। आखिर और मैं क्या करता ?

पत्नी—बस बस, मेरी जबान न खुलवाओ। तुमको ऐसा ही खयाल होता तो आज मेरा बच्चा हलकान न होता। फिर अगर मैंने कुछ कहा तो तुम कहोगे यह नहीं वह······।

घसीटे—अरे मियाँ तो आप ही चुप रहिये। ऐसा हो ही जाता है सरकार ! अल्लाह सलामती रखे हम दोनों का इनाम तो मिलना ही चाहिये।

पत्नी—चल दूर ! यहाँ ईद के दिन यह किलकिल हो रही है और तुझको पड़ी है अपने इनाम की। मेरा बच्चा ईद के दिन रोये और नौकर-चाकर खुशियाँ मनायें। मैं तो खैर जलने के लिए हूँही, मेरा क्या है। मगर मैं कहती हूँ कि इस मासूम ने आखिर क्या बिगाड़ा था किसी का। कल से कैसा खुश-खुश फिर रहा था और इस वक़्त कुम्हलाकर रह गया। अल्लाह रखे जिस बच्चे का बाप हो वह इस तरह कुढ़े।

गुलशन—नन्हें मियाँ को तो मैं मना लूँगी। मगर बीबी हम लोगों का इनाम तो सचमुच मिलना ही चाहिये।

पत्नी—देखो घसीटे और देखो गुलशन ! मैंने कह दिया है कि तुम दोनों मुझे सताओ नहीं। मेरे नथनों में तीर न करो, नहीं तो मुझसे बुरा कोई न होगा। वाह, जैसे सबने मिलकर मुझको पागल बना रखा है ! मैं रात ही को समझ रही थी कि यह उठ चुके सवेरे तड़के और जा चुके ईदगाह। इससे रात ही को इन्कार कर देते तो सब्र आ जाता।

मीर साहब—अब मैं इस वक़्त क्या कहूँ, तुमको तो है ग़ुस्सा।

पत्नी—ऐ और क्या, मेरा ग़ुस्सा तो बदनाम है ही, दुनिया जानती है कि मैं बदमिजाज हूँ। मगर तुम्हारी इन हरकतों को देखने कोई थोड़ी आता है। बरस-बरस के दिन तुमने जैसा बीवी-बच्चे को ख़ुश किया है उसको मेरा ही दिल जानता है।

मीर साहब—अच्छा साहब, मेरा ही .कुसूर सही। तुम उस वक़्त तक बके जाओगी जब तक मैं जाग रहा हूँ। मैं अपनी नींद पूरी करता हूँ, आज कच्ची नींद सोकर उठा हूँ। तमाम बदन टूट रहा है।

पत्नी—हाँ और क्या, तुम्हें दिन भर पड़े-पड़े ऐंठने के सिवा और काम ही क्या है। यह हमारे घर में ईद आई है। चाँद को देखकर तुम्हारी ही सूरत देखी थी ना ?

[मीर साहब हुक़्क़ा पी रहे हैं।]

पत्नी—दुनिया जहान में आज ख़ुशियाँ मनाई जा रही हैं और मेरी क़िस्मत में यह लिखा था कि सुबह से उठ कर कुत्तों की तरह भौंकूँ।

[हुक़्के की आवाज]

पत्नी—ऐ मैं भौंकूँ भी तो उनको क्या गरवा ? [पानदान खुलने की आवाज] मेरे मुक़द्दर में आज के दिन भी यह सोख़्ती लिखी थी। [डली काटती हैं] दुनिया जहान ख़ुशी है, हरेक के घर में चहल-पहल है। [डली काटती हैं] तुम्हारे घर की तरह मक्खियाँ कहीं न भिनक रही होंगी। [डली काटती हैं।]

[मीर साहब हुक़्क़ा पी रहे हैं।]

पत्नी—मैं अपना सर खपा रही हूँ और तुम हो कि चुप, जैसे मैं दीवारों से कह रही हूँ। तुम्हारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। [डली काट रही हैं।]

[मीर साहब हुक्क़े का कश जोर से लगाते है ।]

पत्नी—मुझको तुमने पागल समझ रखा है जो मै चीख रही हूँ और तुम मट खेचे पड़े हो ।

[मीर साहब फिर हुक़्के का कश जोर से लेते हैं ।]

पत्नी— सचमुच मै बेकार को मुँह थका रही हूँ । मालूम होता है जैसे तुम सुन ही नहीं रहे हो । ऐ तो न सुनो मेरी जूती को क्या ग़रज पडी है कि मैं अपना भेजा ख़ाली करूँ ।

मीर साहब—हाँ, वह पान बन गये ।

पत्नी— हाँ तुम्हारे ही लिए तो है पान । [पानदान गिराकर चली जाती है ।]

*मीर साहब—[गुनगुनाकर]* तेरे तीरे-नीमकश को कोई मेरे दिल से पूछे······तेरे······तीर······नीमकश······कोई······मेरे दिल··· से ······पूछे······ये······खलिश······ये खल······खा·········खा-खा-खा-खा ।

[खर्राटे]

# মকরুজ

[किसी के दरवाजे खटखटाने की आवाज़ और उसके बाद पुकारने की आवाज़]

आवाज नं० १—सुहैल साहब, जनाब सुहैल साहब ! अरे भई सुहैल साहब है ?

सुहैल—[चुपके से] ग़फ़ूर, देख बाहर कौन है। अगर जमील साहब हों तो कह देना कि अभी वापस नहीं आये। और अगर जगन्नाथ बाबू हों तो कह देना कि अस्पताल गये हुए हैं। अगर कोई और हो तो कह देना ठहरो, पूछकर बताता हूँ। समझ गया ना ?

[बाहर से आवाज फिर आती है] अरे साहब, सुहैल साहब हैं ?

सुहैल—ठीक है जमील साहब हैं। जाकर कह दे कि अभी दौरे से वापस नहीं आये। जा जल्दी जा। [ग़फ़ूर जाता है।]

पत्नी—आखिर यह क्यों सबसे छिप रहे हो ?

सुहैल—चुप तो रहो ज़रा देर, अभी बताये देता हूँ। अजीब मुसीबत में जान है इन लोगों की वजह से। ज़रा देखना दरवाजे के पास जाकर गये कि नहीं।

[नौकर वापस आता है।]

ग़फ़ूर—कह दिया कि अभी दौरे से वापस नहीं आये।

सुहैल—फिर क्या बोले ?

ग़फ़ूर—जी कुछ नहीं। चुप होकर कुछ मुँह-सा चिढ़ाया, कुछ बड़-बड़ाये और पैर पटखते हुए चले गये।

सुहैल—बस ठीक है। अब अगर कोई आये तो बग़ैर मुझसे पूछे कोई जवाब न देना।

पत्नी—तौबा है, इन्हीं बातों से मेरी तबियत उलझती है कि जाने क्या बात है।

सुहैल—अरे साहब, बात-वात कुछ भी नहीं। जमील खड़े हुए हैं

मिम्बरी के लिए और मुक़ाबले पर हैं जगन्नाथ बाबू। मेल जोल इनसे भी है और उनसे भी। कुछ लोग इनकी तरफ़ से कोशिश कर रहे हैं, कुछ उनकी तरफ़ से। मैं क्यों बीच में पड़ूँ ? ऐसे मौक़े पर घर में घुस रहना ही ठीक है।

पत्नी -- हाँ, तुम क्यों किसी की बुराई-भलाई समेटो। जमील साहब की तरफ़दारी न करो तो बुरी बात है उन बेचारे को देखो तुम्हारे लिए सूट का कपड़ा विलायत से मँगाया और जगन्नाथ बाबू हमेशा दोस्ती निभाते चले आये। अभी पिछले ही महीने तो तुमको कश्मीर लेकर गये थे।

सुहैल—ख़ैर, ख़ैर। मैं इन एहसानों की वजह से तो क्या, मगर हाँ अच्छा नहीं समझता कि इस मुक़ाबले में कोई हिस्सा लूँ।

पत्नी—तो अब कब तक घर में घुसे बैठे रहोगे ?

सुहैल—बस यह मुक़ाबला ख़त्म हो जाये इसके बाद। [दरवाज़े पर दस्तक की आवाज़]।

आवाज़ नं० २—अरे भई कोई साहब हैं। सुहैल मियाँ ?

सुहैल—देखना ग़फ़ूर कौन हैं। याद है ना जो मैंने कहा था ?

ग़फ़ूर—[जाते हुए] जी हाँ, याद है।

पत्नी—इन लोगों ने तो अच्छा घेरा तुमको।

सुहैल—ज़रा आहिस्ता बोलो।

पत्नी—सचमुच जैसे चोरों की तरह बैठे हो।

[ग़फ़ूर आता है।]

ग़फ़ूर—वह हैं, क्या नाम जगन्नाथ बाबू। मैंने कह दिया कि अस्पताल गये हैं। तो बैठे हुए अब अस्पताल से आपके आने का इन्तेज़ार कर रहे हैं। और अपने नौकर से कह दिया है कि वह दूकान पर जाकर बैठे।

सुहैल—क्या मतलब, यानी बैठ गये धन्ना देकर।

पत्नी—मैं कहती हूँ कि साफ़ क्यों न कह दो कि मेरे तुम भी दोस्त हो और वह भी।

सुहैल—लाहौल वला क़ूवत! जब समझा न करो तो बोला न करो। तो ग़फ़ूर वह बैठे हैं?

ग़फ़ूर—जी हाँ, बैठे हैं बाहर कमरे में।

सुहैल—क्या मुसीबत है। अजी मैं पिछले दरवाज़े से निकल कर बाहर उनसे मिले ही लेता हूँ और टाले देता हूँ।

पत्नी—और जो वह न टले तो क्या जमील साहब से दुश्मनी मोल लोगे?

सुहैल—लाओ तुम अचकन तो लाओ ताकि वह समझें कि अस्पताल से आ रहा हूँ। टलेंगे तो खैर उनके फ़रिश्ते।

ग़फ़ूर—यह लीजिये मियाँ अचकन!

सुहैल—मियाँ का बच्चा! धीरे से बोला ही नहीं जाता। जाकर वह पिछला दरवाज़ा खोल दे।

पत्नी—मिम्बरी का शौक़ इन दोनों को सवार हुआ है और मुसीबत आई है दोस्तों के सर।

सुहैल—अजी मैं ऐसा चकमा दूँ कि वह भी क्या याद करें।

[जाते हैं।]

[कुछ दूर चलने की आवाज़, अवकाश, फिर चाप]

जगन्नाथ बाबू—बड़ी राह दिखाई सुहैल मियाँ तुमने।

सुहैल—कौन जगन्नाथ बाबू? भई खूब आ गये। मैं तो खुद आपके पास जाने ही वाला था कि अस्पताल से यह खबर आ गई और बदहवास उधर भागना पड़ा।

जगन्नाथ—क्यों खैरियत तो है?

सुहैल—[ठण्डी साँस लेकर] अजी खैरियत कहाँ? हमारी क़िस्मत

में भी कहीं ख़ैरियत है। वही जिस बहन की शादी के लिए आपसे रुपये लिए थे उसी को अस्पताल में छोड़कर आ रहा हूँ। बस यह समझ लीजिए कि जो साँस आ रही है, आ रही है।

जगन्नाथ—अरे, ऐसी हालत हो गई। आख़िर हुआ क्या ?

सुहैला—अजी होता क्या, क़िस्मत का लिखा पूरा हो रहा है। शादी में बोटी-बोटी क़र्ज़ में बँध चुकी है; अब बीमारी में जो कुछ क़िस्मत में लिखा है वह होगा। और बीमारी ही क्या मैं तो यह कहता हूँ कि ख़ुदा ही बचाये अब उसको·····।

जगन्नाथ—नहीं, ऐसी बात न कहो। मगर यह तो बताओ बीमारी क्या है ?

सुहैल—बीमारी क्या बताऊँ—एक-दो बीमारियाँ हों तो कहूँ। परसों अमरूद के कचालू खाये। [ ठण्डी साँस लेकर ] बस वही बहाना बन गये। नज़ला हुआ, देखते-ही-देखते बुख़ार हो गया। बुख़ार भी ऐसा कि बस चने भुन रहे थे। फिर निकल आई चेचक। चेचक अभी थी ही कि निमोनिया हो गया। और निमोनिया तो ख़ैर ठीक भी हो जाता मगर अब डाक्टर ने देख कर कहा है कि बीमारी क्या तपेदिक़ है और वह भी चौथे दर्जे की।

जगन्नाथ—अरे, रे-रे ! तो फिर अब डाक्टर कुछ उम्मीद बँधाते हैं ?

सुहैल—एक सिविल सर्जन को दिखाया। उसने कहा कि इलाज बेकार है। अस्पताल के बड़े डाक्टर ने कहा कि पचास-पचास रुपये के दो इंजेक्शन लगाकर देखता हूँ। जो सौ रुपये आपके लिए रखे थे वह यों लग गये और अब पता चला है कि अगर ठीक हो गईं तो ठीक हो जायेंगी, नहीं तो फिर जो मुक़द्दर में लिखा है।

जगन्नाथ—और वहाँ अस्पताल में उनके पास कौन है ?

सुहैल—कौन होता बाबूजी, बस ख़ुदा का नाम है। जवाने-जहान क्वारी लड़की !

जगन्नाथ—मगर उसकी तो शादी हो गई है ?

सुहैल—[घबराकर] जी वह, मेरा मतलब यह कि शादी तो हो गई है मगर क्या सुख देखा उस ग़रीब ने शादी का ! आज छठा दिन है कि उसके मुँह में खील तक उड़कर नहीं गई।

जगन्नाथ—मगर आप तो कहते थे कि परसों अमरूद के कचालू खाये थे।

सुहैल—जी हाँ,···वह···कचालू ! कचालू तो ख़ैर खाये थे, बस और फिर कुछ भी नहीं। अब इस वक़्त मैं अपना बिस्तर वग़ैरा लेने आया था कि वहाँ जाकर रहूँ। वह अकेली पड़ी है ग़रीब।

जगन्नाथ—जाओ, भई जाओ। और उस रुपये की कोई फ़िक्र न करना। थोड़ा-बहुत हो सके तो दे दो। बात यह है कि आजकल दूकान पर भी सन्नाटा है। और नया माल रुपया न होने से आ नही सकता।

सुहैल—बाबूजी, मै क्या बताऊँ कि मेरा इस वक़्त क्या हाल है। न दिल क़ाबू में है न दिमाग़। मुझे ख़ुद उसकी बड़ी फ़िक्र है कि किसी तरह जल्द-से-जल्द···[क़दमों की चाप] आओ भई जमील, आओ।

जमील—तुम कब आये, मैं अभी आकर लौट चुका हूँ।

जगन्नाथ—अच्छा भाई, हम चले। दुकान अकेली है। तो मतलब यह कि ख़याल रखना और वैसे कोई फ़िक्र की बात नहीं है।

जमील—क्या ख़ूब, यानी मैं आया और आप चले।

जगन्नाथ—भई दूकान पर कोई नहीं है।

सुहैल—अच्छा तो फिर आदाब अर्ज़ ! [जगन्नाथ जाता है।]

जमील—यार, तुमने मेरा बाजार में निकलना दुश्वार कर दिया है। वह बजाज़ कमबख़्त मारे तक़ाज़ों के मेरा दम निकाले हुए है। और तुमको कोई परवा नहीं होती।

सुहैल—क्या वही सूट के कपड़े का क़िस्सा है ? लाहौल वला क़ूवत कौन दो-ढाई सौ रुपया है, आख़िर हिसाब क्या है उसका ?

जमील—पचास दफ़ा तो आप हिसाब सुन चुके हैं। अरे भई साठ रुपये का बिल है उसका।

सुहैल—बस साठ रुपये के लिए आपका और उसका दम निकला जा रहा है। मैं तो अभी इस जाँकनी से निजात दे देता मगर क़िस्सा यह है कि सरकार तशरीफ ले गई हैं ज़रा अपनी हमशीरा के यहाँ और कुंजियाँ हैं उन्ही के पास। वहाँ है पार्टी।

जमील—अब तो मर्द आदमी, तनख़्वाह भी मिल गई होगी।

सुहैल—ख़ैर तनख़्वाह तो जैसी मिली है उसको मेरा दिल ही ख़ूब जानता है। मगर इत्तेफ़ाक़ से एक चेक आ गया है और उसी में से ये रुपये भी निकाल दूँगा। तुम उसको बस एक हफ़्ता, यानी एक हफ़्ता और मनालो।

जमील—एक हफ़्ता, यानी एक हफ़्ता।

सुहैल—अरे भई, क्या सूरत हो सकती है, तुम ही बताओ। मैं अभी तक गोया दौरे पर हूँ। चुपके से चन्द घण्टों के लिए खिसक आया हूँ। और उल्टे पाँव फिर वापस जा रहा हूँ।

जमील—यह तो तुमने बुरी सुनाई। एक हफ़्ते क्या मानी? यह तो अब एक दिन सब्र करने वाला नहीं है।

सुहैल—अरे भई तो कोई उसका रुपया लेकर भागा जा रहा है? कौन सी ऐसी रक़म है जिसके लिए जान दिये देता है। मुझे दौरे पर जाना न होता तो अभी थोड़ी देर में यह क़िस्सा ख़तम कर देता।

जमील—मगर अभी तो तुमने कहा था भाभी नहीं हैं और कुंजियाँ···।

सुहैल—वह···वह ··वह तो मैंने इसलिए कह दिया था कि तुमको फ़ौरन चेक काट देता। मगर वह भी उसी तारीख़ का होता जब यह आया हुआ चेक नक़द हो सकता।

जमील—तुमने अजीब मुसीबत में फँसा रखा है। उस रोज़ तुमने कहा था कि मंगल के दिन आना। मंगल को आया तो तुमने कह दिया कि तुम्हारी ख़ाला की हालत नाज़ुक हो रही है।

सुहैल—अरे अब उनका क्या ज़िक्र करते हो। हज़ारों मन मिट्टी के नीचे दब चुकीं। साहब, हमने तो ऐसी मिलनसार और ऐसी हँसमुख लड़की देखी ही नहीं।

जमील—लड़की ? तुमने तो ख़ाला कहा था।

सुहैल—वह'''ख़ाला'''हाँ ख़ैर ख़ाला तो थीं ही। मगर उम्र में मुझसे बहुत छोटी थीं। अरे अभी उनकी उम्र ही क्या थी। यही कोई बारह-तेरह साल की उम्र होगी। अच्छी-ख़ासी तन्दुरुस्त, न कोई बीमारी न कुछ। चेचक का टीका इसीलिए लगवा दिया था। मगर होने वाली बात के लिए कि छिलके पर पैर पड़ा और गिरते ही बस ख़त्म।

जमील—अच्छा, मगर तुमने तो कहा था कि अर्से से बीमार थीं और हालत रोज़-बरोज़ ख़राब होती ही गई'''।

सुहैल—हाँ हाँ, मतलब कहने का यह कि केले का छिलका तो बहाना बन गया। उसके बाद उनको शदीद दर्द के साथ इस्तेलाज के दौरे पड़ने लगे और इस्तेलाज के बाद नज़ला ऐसा हुआ कि बस छींकते-ही-छींकते मरहूम इस दुनिया से सिधार गईं। अफ़सोस !

जमील—मगर इस्तेलाज या नज़ला तो ऐसा मुहलिक नहीं होता।

सुहैल—अरे मियाँ, मौत को बहाना चाहिये। इस्तेलाज और नज़ले ही ने तो ग़रीब की जान ली। अब देख लो ना छोटे-छोटे ग़रीब के बच्चे।

जमील—बच्चे ! तुमने कहा बारह-तेरह साल की उम्र होगी।

सुहैल—बारह-तेरह न सही, बाइस-तेइस सही। मतलब यह कि अभी उम्र ही क्या थी ग़रीब की ! मगर मौत के आगे क्या चारा है। आज बीवी उसी के चालीसवें में तो गई हैं।

जमील—अभी से चालीसवाँ···सोम वग़ैरह होगा। मगर तुम तो कह रहे थे वह पार्टी में गई हुई हैं।

सुहैल—भाई बात यह है कि वह लोग ज़रा नई रोशनी के हैं। उनके यहाँ सोम और चालीसवें वग़ैरह में मामूली दावत नहीं होती। इन मौक़ों पर भी पार्टी ही होती है।

जमील—ख़ूब! अच्छा तो फिर बताओ क्या किया जाय?

सुहैल—अरे, अब हो ही क्या सकता है? सब्र के सिवा और अब हम कर ही क्या सकते हैं?

जमील—हाँ बेशक, दुनिया तो सराये-फ़ानी है ही। जो आया है उसको जाना ही है। मगर मेरा मतलब यह था कि अब इस रक़म के लिए क्या किया जाय।

सुहैल—यक़ीन जानो जमील कि दिल टूट गया। मुझे मरहूमा से बेहद उन्स था। आँखों के सामने हर वक्त तसवीर घूमा करती है। मरने से कुछ ही दिन पहले कहने लगीं, 'दूल्हा भाई, अब हम ज़िन्दा रहने वाले नहीं है।'

जमील—यानी तुमसे कहा?

सुहैल—मैं ही मौजूद था वहाँ। मगर उस वक्त तो यह ख़याल भी न था कि कुछ ही दिनों के बाद वह हमेशा के लिए बिछड़ जायेंगी।

जमील—नहीं, मैंने यह पूछा कि यह दूल्हा भाई आख़िर किस रिश्ते से कहा? थीं तो वह ख़ाला?

सुहैल—हाँ, यानी वह बात यह है कि असल में अजीब टेढ़ा रिश्ता है। ननिहाल की तरफ़ से तो वह ख़ाला होती थीं और ददिहाल की तरफ़ से गोया दूल्हा भाई कहती थीं।

जमील—ख़ैर तो अब यह बताओ कि इस रुपये का क्या इंतेज़ाम किया जाय?

सुहैल—रुपये के इंतेज़ाम की क्या ज़रूरत है। मैंने कहा तो कि चेक आ गया है, बस एक हफ़्ते का वायदा कर लो।

जमील—भाई, यह तो सख्त दुश्वार है। कोई और सूरत नहीं हो सकती ?

सुहैल—मेरे नज़दीक अगर कोई सूरत होती तो कभी दरेग़ नहीं करता।

जमील—अच्छा तो तुम यह करो कि अपना चेक एक हफ़्ते बाद की तारीख़ का काट दो।

सुहैल—यह माना, मगर तुम्हारी भाभी आ जायें जब ही ना।

जमील—तो फिर मैं चल रहा हूँ तुम ग़फ़ूर के हाथ भिजवा देना।

सुहैल—हाँ हाँ, भला कोई बात भी हो। अच्छा भाई तो ख़ुदा हाफ़िज़।

जमील—ख़ुदा हाफ़िज़।

[जाता है और उसके बाद ही दरवाज़े पर दस्तक होती है।]

सुहैल—क्या कर रही हो, आ रहा हूँ। [जाता है।]

पत्नी—मैं पूछती हूँ कि आख़िर यह क़िस्सा क्या है ? मेरी कौनसी बहन ख़ुदा न करे मरी है ? किसका चालीसवाँ है, यह बात क्या है आख़िर ?

सुहैल—यानी आप घर की बैठने वाली ठहरीं, आप इन बातों को क्या समझें ?

पत्नी—मैं तो यह पूछती हूँ कि यह रुपया कैसा माँग रहे हैं ?

सुहैल—इसीलिए तो सैकड़ों बहाने तराश रहा था। मिम्बरी के लिए दोनों खड़े हुए हैं और पास टका किसी के नहीं। वह भी माँगने आये थे और यह भी।

पत्नी—तो क्या इनको यह नहीं मालूम कि तुम्हारे पास रुपया कहाँ से आया। और आख़िर तुमने वादा क्यों कर लिया है ?

सुहैल—वादा किस नामाकूल ने किया है ? बहला-फुसलाकर अपना पीछा छुड़ाया है। [गफ़ूर आता है।]

गफ़ूर—यह लिफ़ाफ़ा एक आदमी लाया ह, कहता है दर्ज़ी के यहाँ से बिल लाया हूँ।

पत्नी—बिल कैसा ?

सुहैल—नहीं जी, बिल से मुझे क्या मतलब ? मैं क्या ख़ुदा न ख्वास्ता किसी का मक़रूज़ हूँ ?

पत्नी—देखूँ तो···। [लिफ़ाफ़ा लेती है।] यह इस पर तो तीस रुपये लिखा हुआ है।

सुहैल—कहाँ, देखूँ ? ऐ सुभान अल्लाह ? वाह री आपकी क़ाबलियत ! अरे साहब उसने लिखा है कि तीस वोट गोया मैं जगन्नाथ के लिए मुहैया करूँ। अच्छा गफ़ूर, कह देना कि हम जवाब भिजवादेंगे।

पत्नी—सचमुच मालूम होता है कि जैसे किसी मक़रूज़ को तक़ाजे वाले नहीं घेरते हैं, वही हाल तुमने अपना बना रखा है।

सुहैल—मक़रूज़ ? भई ख़ुदा न करे ऐसी बात न कहा करो। मुझे बस क़र्ज़ ही से चिढ़ है। ख़ुदा बचाये रखे इस बला से।

ग़फ़ूर—मियाँ, वह हिसाब माँगता है।

सुहैल—लाहौल वला क़ूवत ! अब मैं कैसे ज़बानी हिसाब लगाकर बता सकता हूँ कि कितने वोट दिलवा सकूँगा। अच्छा मैं खद उससे कहे देता हूँ। [जाता है।]

पत्नी—ग़फ़ूर, जरा सुनना तो सही क्या कह रहे हैं उससे।

ग़फ़ूर—बीबी, अब मैं क्या बताऊँ ? मुझे तो कुछ क़रज-वरज का क़िस्सा मालूम होता है।

पत्नी—तुझे कैसे मालूम ?

ग़फ़ूर—जमील मियाँ और बाबू जी दोनों इसीलिए आये थे। मियाँ ने बड़े-बड़े बहाने किये हैं। मिम्बरी-विम्बरी की तो किसी ने बात भी नहीं कही।

पत्नी—मेरा तो खुद माथा ठनका था, मगर अब कहती कैसे ! अच्छा अब यह तो पता चला कि यह क़र्ज़ लिया क्यों गया है।

[सुहैल आता है।]

ग़फ़ूर—बीवी, वह जमील मियाँ कह रहे थे कि कपड़े वाला किसी तरह नहीं मानता।

सुहैल—तू झूठा है ! कज्जाब है ! मैंने सूट का कपड़ा हरगिज़ क़र्ज़ नहीं लिया है, न क़र्ज़ सिलवाया है।

ग़फ़ूर—तो मियाँ, मैं यह कब कह रहा था ?

सुहैल—नहीं कह रहा था ? मैंने खुद अपने कानों से सुना है। और अगर इस नमकहराम ने कहा है कि मैं कश्मीर क़र्ज़ लेकर गया था तो यह भी झूठ है।

पत्नी—तो कौन कह रहा है कि तुमने क़र्ज़ लिया है ?

सुहैल—आप दोनों में यही बातें हो रही थीं। गोया मैं झूठा हूँ। न मैंने सूट का कपड़ा क़र्ज़ लिया न क़र्ज़ सिलवाया, न क़र्ज़ का सूट पहन कर क़र्ज़ का रुपया लेकर कश्मीर गया। यह सब इसकी तोहमत है। और अब मैं एक मिनट के लिए भी इसको घर में नहीं रख सकता। निकल यहाँ से। [तेज़ होकर] निकल अभी, निकल। नमकहराम—निकल।

ग़फ़ूर—मियाँ, मैंने तो···।

सुहैल—निकल। इसी वक्त काला मुँह लेकर निकल। वर्ना मैं गर्दन में हाथ देकर निकालूँगा।

पत्नी—सुना तो करो किसी की बात। इसका क्या क़सूर है ?

सुहैल—इसका क़सूर नहीं तो मेरा है ? मैं निकला जाता हूँ।

[तेज़ कदम बढ़ाता है।]

पत्नी—ठहरो तो सही। पूरा क़िस्सा तो सुनलो। अरे सुनते हो।

[ दरवाज़ा खोलने और बन्द करने की आवाज़ ]

# पहली जनवरी

[घड़ी के अलार्म की आवाज़, साथ ही साथ बीवी जाग उठती है।]

पत्नी—उह हूँह'''उहूँ हूहू।

पति—आख्खाह'''आ-आ ''ख़ाह'''।

पत्नी—तौबा है, यह आखिर आधी रात के लिए अलार्म किसने लगा दिया था ?

पति—आधी रात है यह। ज़रा देखो तो लिहाफ़ से मुँह निकाल कर दिन निकल आया है, छः बजने को हैं।

पत्नी—मगर यह अलार्म लगाया किसने था ?

पति—मैंने लगा दिया था, परेड देखने जाना है ना।

पत्नी—परेड ?

पति—हाँ परेड। आज पहली जनवरी है ना।

पत्नी—ठीक है आज पहली जनवरी है और तुमने नये साल की मुबारकबाद भी न दी। ख़ैर, मैं ही तुमको नये साल की मुबारकबाद देती हूँ।

पति—तुमको भी नया साल मुबारक! ख़ुदा करे यह साल हम सबके लिए भागवान गुज़रे!

पत्नी—अच्छा देखो, आज किसी बात पर ग़ुस्सा न करना और न कोई झगड़ा खड़ा करना। नहीं तो पूरा साल इसी किलकिल में गुज़रेगा। समझे कि नहीं ?

पति—मगर एक बात है कि तुम भी आज ग़ुस्सा दिलाने की कोई बात न करना। मैं तो ख़ुद चाहता हूँ हम दोनों इस तरह हँसी-ख़ुशी रहा करें कि दूसरे मियाँ-बीवी हम से सबक़ लें।

पत्नी—मैं ग़ुस्सा दिलाने की कौन सी बात करती हूँ और अगर

कोई बात हो भी जाय तो आदमी टाल दे, मगर तुम तो बाज़ औक़ात लड़ाई के बहाने ढूँढते हो। चलती हुई हवा से लड़ते हो।

पति—इस क़िस्म के मौक़ों पर तुम हँस दिया करो।

पत्नी—हाँ मैं हँस दिया करूँ और तुम ग़ुस्सा किया करो जैसे मैं तो आदमी हूँ ही नहीं।

पति—भला यह भी तो ग़ौर करो कि तुम पर ग़ुस्सा न करूँगा तो किस पर करूँगा और तुम ही मेरे ग़ुस्से को बर्दाश्त न करोगी तो कौन करेगा ?

पत्नी—तो क्या मैं बर्दाश्त नहीं करती हूँ ? मैंने जैसा तुम्हारे ग़ुस्से को बर्दाश्त किया है उसको मेरा ही दिल जानता है।

पति—कहीं भी नहीं। मैंने तो हमेशा यही देखा है कि मेरे ग़ुस्से पर तुमको भी ऐसा ग़ुस्सा आता है कि मैं अपना ग़ुस्सा भूल कर अपनी जान बचाने की फ़िक्र करता हूँ। और तुम ऐसा हाथ धोकर पीछे पड़ती हो कि तौबा ही भली।

पत्नी—और क्या ऐसे ही तो बेचारे नेक हैं। ग़ुस्से में तुमको अगर पलट कर जवाब भी दे दूँ तो आफ़त आ जाय। मैं बेचारी क्या ग़ुस्सा करूँगी।

पति—भई, अगर ईमान की पूछती हो तो बात यह है कि दोनों तेज़ मिज़ाज हैं। और हम दोनों नाक पर मक्खी नहीं बैठने देते।

पत्नी—हाँ तो मैं यह कब कहती हूँ कि मेरे मिज़ाज में ग़ुस्सा है ही नहीं। मगर ख़ुदा न करे कि तुम्हारी तरह ग़ुस्से में आपे से बाहर हो जाऊँ। अगर मुझमें भी तुम्हारी तरह ग़ुस्सा होता तो एक दिन भी बसर न होती।

पति—यह तो ख़ैर आपकी परवरिश है कि आप मेरे साथ बसर कर रही हैं। मगर आपकी सारी ख़ता यह है कि अपने ग़ुस्से को कभी

ग़ुस्सा ही नहीं समझतीं और मेरी ज़रा सी बात आपके लिए ग़ुस्सा हो जाती है।

पत्नी—अब मेरी ज़बान न खुलवाओ। अगर खरी-खरी कहूँगी तो बुरा मानोगे। मैं तो यह कहती हूँ कि जब तुमको ग़ुस्सा आता है तो कुछ सुझाई नहीं देता। खुदा न करे कि तुम्हारा ऐसा ग़ुस्सा किसी में हो।

पति—वही ना कि मेरा ग़ुस्सा तो ग़ुस्सा है और तुम्हारा ग़ुस्सा गोया कुछ भी नहीं। तुम हमेशा मज़लूम बनी रहती हो। काश, तुमने कभी अपनी ज़्यादती भी समझी होती!

पत्नी—अच्छा तो मैं पूछती हूँ कि कल आख़िर मेरी क्या ज़्यादती थी? मैंने यही तो कहा था कि तुमको अपने दोस्तों के पीछे घर का होश नहीं है।

पति—अच्छा तुम ही बताओ यह कौन सी कहने की बात थी? दुनिया में किसके दोस्त नहीं होते?

पत्नी—होते हैं और ज़रूर होते हैं, मगर यह मैंने कहीं नहीं देखा कि बस सुबह से शाम तक और फिर आधी-आधी रात तक दोस्तों ही में आदमी हा हा-हू हू किया करें।

पति—तुम्हारा मतलब यह है कि मैं सारी दुनिया को छोड़कर बस घर में घुसकर बैठ रहूँ, क्यों?

पत्नी—और तुम यह चाहते हो कि बस घर को छोड़कर और सारी दुनिया से मतलब रहे।

पति—तो तुमने मुझसे इसी तरह समझा कर कह दिया होता।

पत्नी—ऐ और क्या, ऐसे ही तो तुम मेरी सुननेवाले हो! बाहर कुछ कहे तो यह आफ़त आई कि हमसाई तक सोते में उछल पड़ीं...।

पति—इसके मानी ये हुए कि हमसाई के डर से अपने घर में कोई बोले ही नहीं। और यह हमसाई का क़िस्सा आपको कैसे मालूम हुआ। उनसे भी मेरे ग़ुस्से का रोना रोया गया होगा।

पत्नी—हाँ क्यों नहीं ? मैं दुनिया भर में तुम्हारे ग़ुस्से का रोना ही तो रोती फिरती हूँ । उन्होंने खुद ही पूछा तो अलबत्ता मैने भी कह दिया कि ख़फ़ा हो रहे थे ।

पति—हाँ, हाँ वह तो मैं पहले ही समझता था कि तुम मुझको बदनाम करने से बाज़ नहीं आ सकती । अपने मैके में मेरा ग़ुस्सा तुमने मशहूर किया । अपनी एक-एक बहन को मेरी बदमिजाजी का रोना रोईं । अब पास-पड़ोस में मेरी दिमाग़ की ख़राबी का डंका पीटो ।

पत्नी—देखो, इस वक्त मैके का कोई जिक्र न था ।

पति—था कैसे नहीं, जब बात पैदा होगी तो कही भी जायगी ।

पत्नी—अच्छा तो तुम क़सम खाकर कह दो कि मैंने तुमको बदनाम किया है ।

पति—क़सम खाकर कह दूँ, गोया मै झूठा हूँ, दरोग़गो हूँ, कज्ज़ाब हूँ !

पत्नी—देखो, अब तुम ही को ग़ुस्सा आ रहा है और बेकार को बात बढ़ रही है ।

पति—ग़ुस्सा क्या आ रहा है, जब मिजाज ही खराब है तो ग़ुस्सा आना क्या मानी ? मगर मैंने तो खुद आपके घर में किसी को फ़रिश्ता नहीं देखा । अपने वालिद साहब को देखिए खाने में नमक तेज़ हो जाए तो दस्तरख्वान उलट देते हैं । भाई साहब क़िब्ला है कि बारूद के बने हुए हैं । मगर साहब, बदनाम हैं तो हम ही ।

पत्नी—आ गया न ग़ुस्सा ? मैं तो पहले ही डर रही थी ।

पति—फिर वही ग़ुस्सा ! अरे साहब, यह ग़ुस्सा नहीं वाक़या है कि तुमने मुझको बदनाम किया है, मेरा ग़ुस्सा मशहूर किया है और तुम्हारी वजह से सब मुझको बदमिज़ाज कहते हैं ।

पत्नी—अब तुम ही बताओ कि यह ग़ुस्सा नहीं तो आखिर क्या है? और इसमें मेरे मशहूर करने की क्या बात है । क्या कोई तुम्हारी यह आवाज़ नहीं सुनता ।

पति—आवाज़ नहीं सुनता, आवाज़ नहीं सुनता। कोई आवाज़ सुनेगा तो मेरा क्या करेगा। जो कोई मुझे कुछ देता हो न दे। तुम्हारे घर वाले मुझको बदमिज़ाज कहते है तो समझ में नहीं आता कि बद-मिज़ाज से आखिर ताल्लुकात ही क्यों रखते है ?

पत्नी—वह तो तुम खुदा से चाहते हो कि किसी बहाने ताल्लुक़ात छूट जायें। मगर मै पूछती हूँ कि आखिर इस वक़्त मेरे घर वालों के ताने क्यों दे रहे हो ? मैने कभी तुम्हारे घर वालों के लिए एक लफ़्ज़ भी नहीं कहा।

पति—मेरे घर वालों के मुताल्लिक़ तुम क्या कहतीं ? कोई बात होती जब ही तो कहतीं।

पत्नी—अब कहलवाते हो तो सुनो—मेरे वास्ते कौन-सी बात उठा रखी गई। तुम्हारे यहाँ बदमिज़ाज हूँ, फूहड़ मैं हूँ, तुमको मैंने उल्लू बना रखा है। एक ही बात हो तो कही जाए।

पति—मेरे घर वालों में से कोई ऐसी बात नहीं कह सकता।

पत्नी—हां, हां, तुम्हारे घरवाले तो सब बड़े सीधे है। बड़े शरीफ़ और बड़े नेक हैं। बुराइयाँ तो बस मेरे धर वालों में हैं।

पति—बेशक! इसमें क्या कुछ झूठ भी है! तुम्हारे मैके में छोटे से लेकर बड़े तक सबको मैने खूब समझा है।

पत्नी—खुदा की मार है मुझ पर कि मेरी वजह से मेरे मैके वाले ख्वामख्वाह् बटोरे जा रहे हैं। खुदा मुझको मौत भी तो नहीं देता कि क़िस्सा ही पाक हो जाये।

पति—मेरे ज़ुल्म ही इतने ज्यादा हैं कि इन बेचारी के लिए सिवाय मौत के कोई चारा नहीं।

पत्नी—मालूम नहीं किस दिन मेरे मैके वालों ने तुम्हारी बदमिज़ाजी की शिकायत की थी। अलबत्ता अपने ग़ुस्से का चर्चा मैंने तुम्हारे यहाँ बच्चे-बच्चे की ज़बान पर सुना है। अभी कल वह टाँग बराबर का

छोकरा बशीर कह रहा था कि भाभीजान ने तो भाईजान को दबा लिया है।

पति—तो क्या झूठ कहता है ? देखता नहीं है वह कि बराबर से लड़ती हो। तुमको तो शायद यही तालीम दी गई है कि शौहर को जूती की नोक पर रख कर मारना।

पत्नी—हाँ तो यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी शै पाकर ये छटाँक-छटाँक भर के बच्चे तक मुझसे जो चाहते हैं कहते हैं।

पति—ख़ैर तुम्हारे यहाँ तो मन-मन भर के बुड्ढे मेरी बदमिज़ाजी का रोना रोते हैं। अरे साहब, मेरा ग़ुस्सा तेज़ है, मैं बदमिज़ाज हूँ, मेरा दिमाग़ ख़राब है तो मुझको मेरे हाल पर पड़ा रहने दें। अगर किसी के आगे हाथ फैलाऊँ तो जो चोर की सजा वह मेरी।

पत्नी—अब तुम इतनी ज़ोर-ज़ोर से चीख़ रहे हो तो जो कोई सुनेगा क्या कहेगा ? यही ना कि ग़ुस्सा कर रहे हो।

पति—यह मैं ग़ुस्सा कर रहा हूँ ?

पत्नी—तो मुझे क्या मालूम कि ग़ुस्से की तरह तुम्हारी ख़ुश-मिज़ाजी भी होती है और इस तरह तुम मज़ाक़ किया करते हो।

पति—मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूँ, सच कह रहा हूँ कि तुमने मेरे ग़ुस्से का ढिंढोरा पीटा है। तुमने तमाम दुनिया में मुझको बदनाम किया है और तुम्हारी ही वजह से मैं बदमिज़ाज मशहूर हूँ।

पत्नी—अच्छा अब तुम ही बताओ कि इस वक़्त ग़ुस्से की कौन-सी बात थी ?

पति—ग़ुस्से की बात, फिर वही ग़ुस्से की बात ! अरे साहब ग़ुस्से की बात यही है की आप इसको ग़ुस्सा कहती हैं।

पत्नी—तौबा है अल्लाह ! ग़ुस्सा करते जाते हैं और फिर यह भी मुसीबत है कि इसको ग़ुस्सा न कहो।

पति—नहीं, कहो ज़रूर कहो ! मुझे तो देखना यह है कि तुम

मुझको बदनाम करके आखिर पाओगी क्या, और मेरा बिगाड़ क्या लोगी ?

[सिराज और मिसेज़ जमीला सिराज दाखिल होते हैं।]

सिराज—अरे भई, बग़ैर पूछे हम आ सकते हैं ?

जमीला—बग़ैर पूछे आने वाले जो शर्मिन्दा होना नहीं चाहते, यही कहते हैं।

सिराज—मगर यह वाक़्या क्या है ?

जमीला—शायद हम लोग मुख़िल हुए।

सिराज—नहीं साहब, यहाँ तो दोनों तरफ़ निगाहों में शोले, अबरू पर बहुत सी शिकनें और नथने फूले हुए नज़र आ रहे हैं। ये आसार तो वर्ज़िश के हो सकते हैं। वर्ना कुछ खटपट हुई है।

जमीला—क्यों बहन शकीला, क्या बात है आखिर ?

शकीला—कोई बात नहीं बहन।

सिराज—अमाँ रशीद, आखिर वाक़्या क्या है ?

रशीद—कुछ भी नहीं, आओ बैठो।

जमीला—कुछ है ज़रूर चाहे कहो नहीं। मगर हाँप रही हो बहन तुम।

शकीला—कुछ भी नहीं, योंही ज़रा तबियत ख़राब है।

सिराज—यार रशीद तुम भी तो कुछ हाँप-से रहे हो।

रशीद—हाँ, शायद सर्दी लग रही हो। और कोई बात नहीं।

जमीला—मैं कहती हूँ ज़रूर कोई बात है। तुम्हारी आँखों से शिकायत बरस रही है। चेहरा भी तमतमा रहा है।

शकीला—अभी सोकर उठी हूँ, शायद कोई ऐसा-वैसा ख़्वाब देखा हो।

सिराज—रशीद, तुम छिपाने की कोशिश न करो, ज़रूर झड़प हुई है। तुम संभलने के बावजूद अब तक बिफरे हुए हो।

रशीद—अमाँ कुछ नहीं, इनकी आदत है कि मेरी ज़रा-सी बात को ग़ुस्सा कह देती हैं। और तमाम दुनिया में मेरे ग़ुस्से का ढिंढोरा दिन-रात पीटा करती हैं।

शकीला—देखो बहन जमीला, यह मैं ढिंढोरा पीट रही हूँ। खुद अपने ग़ुस्से का नमूना दिखाया जा रहा है।

सिरोज—औरतें होती तो बड़ी प्रोपेगण्डाबाज़ हैं खुदा ही इनकी प्रोपेबाज़ी से बचाए।

जमीला—बस रहने भी दीजिए। मेरे सामने यह ऊटपटाँग न हाँकियेगा। मैं खूब जानती हूँ कि मर्द हमेशा मर्द ही की हमदर्दी करता है।

सिराज—तो मैं कुछ कह थोड़ी रहा हूँ। हाँ भई रशीद, तो तुम ही ग़म खाओ। मुझको देखो कि किस तरह पस्पाई में खुश रहता हूँ।

जमीला—यह है वही। वह तुम क्या कह रहे थे—प्रो'''।

सिराज—प्रोपेगण्डा'''।

जमीला—हाँ प्रोपेगन्डा। गोया मैं तुम पर ज्यादती करती हूँ और तुम मेरी ज्यादतियाँ बरदाश्त करते हो। मैं जालिम हूँ और तुम मज़लूम हो। उफ्फो री मर्द की चालाक जात, ज़रा-सी बात में कितनी बड़ी बात कह गये। अरे तुमको बेचारे क्या देखेंगे। तुमको तो कोई मेरी आँखों से देखे।

सिराज—अब तक कहा जाता था कि लैला को मजनूँ की आँखों से देखना चाहिए, मगर आप यह फरमाती हैं कि मजनूँ को लैला की आँखों से देखो।

जमीला—कलेजे में चुटकी ले ली और अब मज़ाक़ कर रहे हैं। आप पस्पा हैं, मैंने पस्पा किया है आपको? मैं पूछती हूँ कि यह आपने कहा कैसे?

सिराज—अरे छोड़ो भी इस क़िस्से को। योंही कह दी एक बात।

अगर यह कोई सख्त बात है तो वापस लेता हूँ मैं। मगर तुम तो खुद ज़रा-सी बात पर बिगड़ कर अपनी नाजुक मिज़ाजी का नमूना पेश करने लगीं।

जमीला—हाँ, यही तो मैं कहलवाना चाहती थी कि सबसे पहले तो तुम खुद ही मुझको नाज़ुक मिज़ाज समझते हो। जब ही तो तुम्हारे तमाम घरवाले मुझको बम का गोला समझते हैं।

सिराज—बम का गोला ?

जमीला—हाँ हाँ बम का गोला ! क्या मैं बहरी हूँ, सुनती नहीं हूँ कि मेरी बदमिज़ाजी का घर भर में चर्चा है। घर वाले आये-गये तक मेरी बदमिज़ाज़ी पर नाम रख जाते हैं। कल तहसीलदार की बीवी ने सबके सामने कहा कि बहू का मिज़ाज ज़रा तेज है।

सिराज—फिर आपने क्या कहा ?

जमीला—मैं क्या कहती। पहले तो चुप रही फिर जब मैंने देखा कि सभी सुनकर चुप हो रहे तो इतना ज़रूर कहा कि अपने लिए ज़रा नेक मिज़ाज बहू ढूँढ कर लाइयेगा।

सिराज—गोया आपने तस्दीक़ कर दी।

जमीला—यह···उनकी बात कोई न हुई और मेरी बात बद-मिज़ाजी की तस्दीक़ हो गई। वह तो मैं कह ही रही हूँ कि सबसे ज्यादा मुझको बदमिज़ाज समझते हो।

शकीला—हटाओ भी बहन, तुम ही चुप रहो। मुझे देखो कि सब कुछ सुनती हूँ। सुनते-सुनते कलेजे में ज़ख्म पड़ गये हैं, मगर चुप हूँ।

रशीद—फिर तुमने वही बात कही। मैं कहता हूँ कि तुम आखिर कलेजे में ज़ख्म क्यों डाल रही हो। मेरी बदमिज़ाजी अगर बर्दाश्त नहीं होती तो मैं आज से बाहर रहा करूँगा।

शकीला—आप तो बे बात-की-बात पैदा करते हैं। यहाँ आखिर आपका ज़िक्र था जो आप बाहर रहने के लिए तैयार हो गये ?

रशीद—मेरी आँखों में धूल झोंकती हो। मुझको गधा समझती हो। मैं अँधा हूँ? आखिर तुम अभी क्या कह रही थीं?

शकीला—मेरा मतलब तो यह था कि दुनिया की ज़बान को कोई नहीं रोक सकता। मगर आपको तो आ रहा है इस वक़्त ग़ुस्सा, हर बात अपने ही ऊपर ले जाते हैं।

रशीद—फिर वही ग़ुस्सा? ग़ुस्सा, ग़ुस्सा, ग़ुस्सा! ग़ुस्सा न हुआ तुम्हारा वज़ीफ़ा हो गया।

शकीला—अच्छा तो आप बता दीजिए ग़ुस्से को क्या कहा करूँ।

रशीद—तो यह ग़ुस्सा कर रहा हूँ?

शकीला—अब मैं क्या बताऊँ, मैं तो ज़रा-सी बात कह कर गुनह-गार हो जाती हूँ। अब जो आप कहिए वही कहूँ?

सिराज—अमाँ छोड़ो भी इन बातों को। ये बातें न अब तक तै हुई हैं न तै होंगी। इन बातों को तो मेरी तरह हँस कर टाल दिया करो।

जमीला—यह बेचारे इन बातों को हँस कर टाल दिया करते हैं। बड़े नेक हैं, और मैं हमेशा यही बातें किया करती हूँ। बस इन की वजह से लड़ाई टला करती है।

सिराज—लाहौल वला क़ूवत! आप फिर बुरा मान गईं। मेरा मतलब तो यह है कि मियाँ-बीवियों में यह छेड़छाड़ चली ही जाती है। जिस तरह खुद अपने यहाँ मैं कभी-कभी चुप हो जाया करता हूँ उसी तरह इनको भी चुप होने का मशवरा दे रहा हूँ।

जमीला—वही तो मैं कह रही हूँ कि गोया तुम्हारी वजह से हमारे घर की लड़ाई टला करती है, यही तो तुम कह रहे हो?

सिराज—अच्छा तो अब आप जो कुछ कहिये वह कहूँ। मैं अगर अपनी तरफ़ से कुछ और कहूँगा तो उसके मानी खुदा जाने क्या हो जायेंगे।

जमीला—मैं तो ज़बरदस्ती मानी पैदा करके तुमसे लड़ाई करती हूँ। ख़ुदा ग़ारत करे मुझ लड़ने वाली को !

सिराज—अरे-रे-रे···लाहौल वला-क़ूवत! ख़ुदा के लिए यह कोसा-काटी शुरू न करना। मेरा मतलब तो यह था कि अच्छा ख़ैर कुछ नहीं मुझ से ग़लती हुई।

शकीला—बस बहन, बस। देखो तो वह किस तरह मर्द होकर तुम्हारी बातों को टाल रहे हैं।

रशीद—यानी यह कि नहीं टालता हूँ तो एक मैं। दुनिया के मर्दों में बदतरीन मर्द मैं हूँ। हरेक में इनको ख़ूबी नज़र आ सकती है, मगर मैं तो ऐसा गया-गुज़रा हूँ कि मुझमें कोई ख़ूबी नहीं।

शकीला—लो और सुनो। ऐ मैं कहती हूँ कि क्या ज़बान में ताला डाल लू, होंठ सीकर बैठ रहूँ ? अच्छा अब मैं एक लफ़्ज़ भी न बोलूँगी।

सिराज—भई रशीद, अब अगर तुम बोले तो यह तुम्हारी ज्यादती होगी। भाभी ने इस वक़्त अपनी तरफ़ से क़िस्से को ख़त्म कर दिया है।

जमीला—मैं जानती हूँ कि यह तुम मुझे सुना रहे हो। मगर मैं औरत को इतना गिरा हुआ नहीं देख सकती और न ख़ुद इतना गिर सकती हूँ, समझे कि नहीं ?

सिराज—यानी आपका यहाँ क्या ज़िक्र था और आपसे गिरने के लिए कहा किस नामाक़ूल ने है ? आपके लिए तो ख़ुदा मुझको गिरने को सलामत रखे।

जमीला—तुम अपना टट्टू आगे ही रखो और अपने को बराबर नेक साबित किये जाओ।

सिराज—लीजिये साहब, जो कुछ मैंने कहा था उसका तर्जुमा गोया यह हुआ। अच्छा साहब फ़र्ज़ कर लीजिये कि मैं अपने को नेक ही साबित कर रहा हूँ तो इससे आपको क्यों परेशानी होती है ?

रशीद—नहीं समझे तुम, बड़े कोदन हो। क़िस्सा दरअसल यह है कि अगर तुम नेक साबित हो गये तो लड़ाई की जड़ गोया तुम्हारी बीवी क़रार पायेंगी और अगर वह नेक हैं तो तुम।

शकीला—यही क़िस्सा तो हमारे यहाँ भी है।

रशीद—ग़लत कहती हो तो तुम, यह क़िस्सा हमारे यहाँ नहीं है। हमारे यहाँ तो मुसीबत यह है कि तुम्हारी खामोश हरकतों को कोई देखने नहीं आता और मेरी आवाज़ दूर ही से लोग सुन लेते हैं।

सिराज—खैर अपने यहाँ का मामला तो मैं बिलकुल समझ गया कि आइन्दा से मुझको यह कहना चाहिए कि मैं बड़ा बद-मिज़ाज हूँ।

शकीला—और मुझको हरेक से यह कहना चाहिए कि यह जो कड़कदार आवाज़ आप सुनते हैं वह इनकी नहीं दरअसल मेरी होती है।

रशीद—यह है वह चुटकी जिसको देखने न तुम्हारी हमसाई आयेंगी न घर का कोई आदमी। अलबत्ता सब मेरा ग़ुस्सा देख लेंगे और मेरी ही बदमिज़ाजी का सबको यक़ीन आयगा।

जमीला—अफ़सोस तो यह है कि परेड देखने जाना है, नहीं तो मैं आज इस क़िस्से को हमेशा के लिए तै करके उठती कि ज्यादती मेरी तरफ़ से होती है, या इनकी तरफ़ से। यह हमेशा भीगी बिल्ली बनकर अलग हो जाते हैं और मुझको नक्कू बनवा रखा है।

रशीद—परेड अब कहाँ रखी? इस परेड ही कम्बख़्त ने तो आज नया साल इस शगुन के साथ शुरू किया है।

शकीला—मैंने पहले ही कह दिया था कि देखो आज कोई बात ऐसी न हो कि ग़ुस्सा आये, नहीं तो पूरा साल इसी तरह गुज़रेगा।

सिराज—और यही मैंने इनसे कहा था मगर......।

जमीला—देखो जी फिर तुमने अपना जिक्र किया। तुमने यह कहा था कि आज नया साल शुरू हो रहा है, आज ज़रा नाक पर बैठने वाली मक्खी से होशियार रहना। यह तो और भी छेड़ना हुआ।

रशीद—और इन बेगम साहबा का मतलब क्या था, यही कि तुम्हारा गुस्सा तो गोया जरूरत में से है। मगर आज न आये तो अच्छा है। इसके मानी यह होते गुस्से में कहा हो तो आये। [नौकर दाखिल होता है।]

नौकर—बेगम साहब चाय, तैयार है।

शकीला—तो मैं क्या करूँ, साहब से कहो।

रशीद—फेंकदे जाके चाय चूल्हे में। दूर हो यहाँ से। गया या कुछ लेकर जायगा?

[ नौकर जान बचा कर भागता है।]

शकीला—मैं कहती हूँ कि आख़िर चाय ने क्या बिगाड़ा है?

सिराज—यही मैं भी ग़ौर कर रहा था कि आज घर पर चाय नहीं मिली तो क्या यहाँ भी न मिलेगी?

जमीला—घर पर तो तुम्हें कभी कुछ मिलता ही नहीं है फ़ाक़े करते हैं बेचारे क्या करें! जो कोई सुनेगा वह क्या कहेगा, यही ना कि बीवी बेढंगी है।

सिराज—मेरा मतलब यह था कि······।

जमीला—मैं मतलब-वतलब कुछ सुनना नहीं चाहती। तुम्हारा जितना जी चाहे बदनाम करलो। आख़िर मैं पूछती हूँ कि तुमसे किसने कहा था कि चाय न पियो।

रशीद—तो तुम चाय पीलो ना सिराज।

शकीला—आप चलिये तो वह भी पियेंगे।

रशीद—मेरा इस वक्त चाय पीने को दिल नहीं चाहता।

सिराज—मैं तो यों ही कह रहा था मज़ाक में चाय तो मैं पीकर आया हूँ।

जमीला—ग़लत कहते हो तुम मुझको कपड़े पहनने में ज़रा देर हो

गई तो कहने लगे परेड ख़त्म हुई जाती है। हथेली पर सरसों जमाकर वहाँ से चले आये और अब चले हैं बातें बनाने।

शकीला—तो चलिये ना आप सब,चाय आख़िर तैयार ही रखी है।

रशीद—चलिये चलता हूँ, आपने कलेजा जितना ठण्डा किया है, उसको अब चाय से मोतदिल बनाने के लिए चलता हूँ।

शकीला—उठो जमीला बुरी बात है कहना भी मान लिया करते हैं। आइये सिराज साहब। [सब उठकर डाइनिंग हाल में जाते हैं। मेज़ पर प्यालियों की खड़बड़-खड़बड़ सुनाई देती है और रशीद फिर न्द आवाज से कहता है।]

रशीद—कल्लू, कल्लू ! किधर है आख़िर कल्लू ?

शकूर—सरकार, मैं चाय ला रहा था।

रशीद—देख तो सही यह प्याली है ?

शकूर—नई प्यालियाँ बेगम साहब ने रखवादी हैं, बाहर निकली हुई यही हैं।

रशीद—और बेगम साहब ने मना कर दिया है कि इन प्यालियों को भी धोना नहीं ? क्यों देख इसे आँखें खोलकर।

शकूर—सरकार अभी साफ़ करके सब प्यालियाँ रखी हैं।

शकीला—जाके फिर साफ़ कर इसे।

रशीद—अब आपको ख़याल आया है ! नौकर भी देखते हैं कि जब घर की मालिका का यह हाल है तो उनको काम करने की क्या ज़रूरत है।

सिराज—घर की मालिका की तवज्जो बड़ी ज़रूरी है।

जमीला—क्या मतलब इससे तुम्हारा ? मैंने किस दिन तुम्हारे यहाँ तवज्जो नहीं की थी।

सिराज—ऐ सुभान अल्लाह, यानी आप हवा से लड़ रही हैं। आपका यहाँ क्या ज़िक्र था ?

जमीला—अरे मैं ख़ूब समझती हूँ तुम्हारे इन छींटों को। मुझसे बातें तो बनाओ नहीं। मगर इतना जानती हूँ कि एक दिन मैं घर में न हूँ तो पता चले।

रशीद—अब मेरा मुँह क्या देख रहा है, हटा यहाँ से इस प्याली को, नहीं तो ले।

[प्याली उठाकर फेंक देता है और वह टूट जाती है।]

शकीला—अब यह भी ग़ुस्सा नहीं है तुम्हारा ? पूरा सेट ख़राब गया या नहीं ?

रशीद—ग़ुस्सा अगर है तो जाओ ग़ुस्सा ही सही। नौकरों को भी सिर पर चढ़ा लिया जाय तो तुम समझो कि ग़ुस्सा नहीं है। मैं इन सब प्यालियों को इस वक़्त उसके मुँह पर मार दूँगा। गधा, नमकहराम चोर निवाला हाज़िर।

शकीला—मगर इस कम्बख़्त का क्या गया, नुक़सान तो अपना हुआ कि सेट ख़राब गया। अब क्या इसके साथ की प्याली मिली जाती है।

रशीद—चली वहाँ से ! सेट ख़राब हो गया तो क्या मैं इस गन्दी प्याली में चाय पी लेता। तुम तो चाहती हो कि कुत्तों के बर्तन में मुझको खाने को दिया जाय और मैं चुप रहूँ।

शकीला—अच्छा ख़ैर होगा, अब इस वक़्त तुमसे कौन बोले।

रशीद—हाँ, यानी इस वक़्त मुझ पर भूत सवार हैं। पागल हो गया हूँ, मुझे कुत्ते ने काट लिया है।

शकीला—अच्छा तो तुम इस प्याली में पीलो ना, यह साफ़ है।

रशीद—मैं अब किसी में न पिऊँगा। बस पी चुका और पिला चुकीं तुम।

शकीला—भला कोई बात भी है। देखिये सिराज साहब, वे बात-की-बात पैदा कर लेते हैं और फिर ख़ुद ही बुरा भी मानते हैं।

रशीद—सुनलो सिराज, तुमको मुतवज्जा किया जा रहा है। तुम्हारी अदालत में यह रहम की दरख्वास्त है। और इससे यह भी साबित होता है कि आप मजलूम यानी मै जालिम हूँ।

शकीला—तौबा है, कहाँ से कहाँ बात पहुँच जाती है।

रशीद—तुम्हारी बात बस मेरे दिल तक और मेरी बात हमसाई के कानों तक। तुम्हारे मैके वालों की जबान तक और जहाँ तक तुम चाहो।

शकीला—फिर वही कम्बख़्त मैके वाले? अच्छा कह लीजिये जो जी चाहे।

सिराज—मेरे खयाल में गुस्से की गर्मी चाय को ठण्डा कर देगी।

जमीला—हाँ तुमको तो घर पर चाय मिली ही नहीं है ना? तुम हर तरह अपनी बदहवासी दिखाओ।

सिराज—यानी मैं बोला और आफ़त आई। अच्छा साहब कम से कम मै कुछ न बोलूँगा।

जमीला—आफ़त कहो, क़यामत कहो, मुसीबत कहो तुम ही तो मेरी बात का बतंगड़ बनाते हो।

रशीद—लो सिराज, तुम चाय पियो। [चाय उँडेलता है और यकायक कुछ याद आ जाता है तो नौकर को आवाज़ देता है। कल्लू दौड़ता हुआ आता है।]

रशीद—कल्लू, ओ कल्लू! फिर ग़ायब हो गया।

कल्लू—सरकार, मैं प्याली साफ़ कर रहा था।

रशीद—प्याली के बच्चे, मैं कहता हूँ क्या आज खाली गरम पानी पिलायेगा? कहाँ हैं बिस्किट, मक्खन, टोस्ट? क्या खाया जायगा तेरा सर?

कल्लू—जी हाँ, निकालता हूँ बिस्कुट। बेगम साहब, कुंजी दीजिये।

रशीद—अबे कुंजी के बच्चे, अब निकालने चला है ? मगर तेरा क्या क़सूर है जब कुंजी ही वह लिये बैठी हैं तो तू क्या करे।

सिराज—साहब, इस कामले में हमारे यहाँ अच्छा इंतेज़ाम है। कुंजी-ताले का झगड़ा ही नहीं रखतीं।

जमीला—हाँ हाँ, मैं तो बेढंगी हूँ। हर चीज खुली पड़ी रहती है। जो जिसका जी चाहे ले जाये। तुम्हारे घर में मेरी वजह से लुहस पड़ी रहती है। खूब घुमा-फिराकर बात की जाती है।

सिराज—लीजिये, यक न शुद दो शुद ! हम अपने नज़दीक तारीफ़ कर रहे थे। मगर क़िस्सा यह है कि हैं दरअसल बेग़ैरत कि बग़ैर बोले भी चैन नहीं। लाहौल वला-कूवत !

जमीला—लाहौल भेजो या कुछ, मगर मैं तुम्हारी एक-एक बात को खूब समझती हूँ।

सिराज—इतना तो मैं भी कहूँगा कि या तो मुझको बात करना नहीं आती या हर बात का बुरा पहलू निकालने में तुम को कमाल हासिल है।

रशीद—नहीं साहब, क़िस्सा यह है हमारे यहाँ कि अशरफ़ियाँ लुटती हैं और कोयलों पर मुहर। अब कौन पूछे कि साहब इन बिस्कुटों और मक्खन को ताले में रखने की क्या ज़रूरत थी ?

शकीला—ताले में न रखूँ तो क्या करूँ ? सब नौकर-चाकर अपनी खुशी से जो चाहें उड़ायें। और वक़्त पर अगर कोई चीज न मिले तो फिर तुम ही जमीन-आसमान एक कर दो।

रशीद—यानी वल्लाह, मुझको पागल समझा जाता है। जमीन-आसमान एक कर दो ! मतलब यह कि मेरे डर की वजह से यह सब कुछ हो रहा है।

शकीला—तुम तो भूल जाते हो। अभी परसों मक्खन नहीं था तो तुम ही ने आफ़त मचा दी थी। छुरी अलग फेंकी और मक्खन का बर्तन अलग फोड़ा। [बहुत ज़ोर से]

रशीद—सुनादो, पूरा क़िस्सा सुनादो। और नमक-मिर्च लगाकर सुनादो। सिराज और जमीला ने परसों का क़िस्सा नहीं सुना है, इनको वाक़ई सुनाना चाहिये।

शकीला—देखो, देखो इतनी बुलंद आवाज़ में न बोलो! फिर मैं कहूँगी कि तुम ख़ुद अपने ग़ुस्से को शोहरत देते हो।

रशीद—मैं अपना सर पीट लूँगा। इस वक़्त आख़िर तुम्हारा मतलब क्या है और तुम चाहती क्या हो? क्या मैं निकल जाऊँ इस घर से?

शकीला—मैं कुछ नहीं चाहती और न मैं अब कुछ कह रही हूँ। लो ये हैं बिस्कुट-विस्कुट! इतनी सी देर के लिए यह आफ़त भी आना थी।

रशीद—यह बात, वह बात और फिर एक चुटकी। क्या आफ़त तुम पर है? पहले तुम यही तै करलो उसके बाद चाय पियो।

सिराज—अमाँ, हटाओ भी इस क़िस्से को, लो पियो चाय।

जमीला—हाँ, इन बातों में देर हो रही है और बेकार इनको भी चाय जा रही है।

सिराज—फिर वही? अरे साहब, मेरा मतलब इस क़िस्से को टालने से है। और आप गोया मुझ पर ख़ार खाये बैठी हैं।

जमीला—मैं तो तुम पर हमेशा ख़ार खाये बैठी रहती हूँ। फिर तुम बेकार इस मुसीबत को अपने साथ-साथ रखते हो?

सिराज—अरे तौबा, भई ख़ुदा गवाह है। जो मेरा यह मतलब हो।

शकीला—लो जमीला, हटाओ। हटाओ भी इन बातों को, चाय पीलो। लो यह बिस्कुट लो।

जमीला—मैं भूख से बदहवास थोड़े ही हूँ। इनको दीजिये।

सिराज—लो रशीद, बस अब तुम पियो चाय। ख़त्म करदो यह क़िस्सा।

रशीद—हो चुका खत्म यह क़िस्सा। यह क़िस्सा मुझको खत्म करके खत्म होगा।

शकीला—खुदा न करे! अब देखिये ये कोसने शुरू हुए।

रशीद—मैं अपने को कोस रहा हूँ। और अपने को कोसना गोया तुमको दुआ देना है।

शकीला—यह तो खुदा ही जानता है और इसका इन्साफ़ खुदा ही के हाथ है कि······।

रशीद—हाँ हाँ, अगर मैं तुम्हारे साथ बे इन्साफ़ी कर रहा हूँ तो खुदा का ग़ज़ब टूटे मुझ पर!

सिराज—अरे यार, मानोगे नहीं तुम? लो पियो।

रशीद—नहीं भाई, मैं नहीं पियूँगा इस वक़्त।

शकीला—तुम्हारी वजह से फिर कोई भी नहीं पीयेगा।

रशीद—लो मैं दफ़ान हुआ जाता हूँ, लो।

[रशीद जाता है, शकीला उसके पीछे जाती है।]

शकीला—अरे सुनो तो सही। ठहरो तो, बात तो सुनो। [अवकाश]

सिराज—देख रही हो?

जमीला—खूब देख रही हूँ।

सिराज—इसको कहते हैं ग़ुस्सा। और तुम हो कि मेरे ही ग़ुस्से को कहती हो।

जमीला—नहीं, तुम्हारे ग़ुस्से को क्यों कहूँगी, मैं तो खुद अपने ग़ुस्से को सुनती हूँ।

सिराज—मगर तुमने देख लिया कि ग़ुस्सा इसको कहते हैं। मैंने कम-से-कम कभी कोई बर्तन नहीं तोड़ा ग़ुस्से में।

जमीला—हाँ तो अब यह अरमान भी पूरा कर लो। मगर तुम तो बड़े नेक मिजाज हो। तुमको ग़ुस्से से क्या मतलब।

सिराज—मगर तुम तो बदमिजाज कहती हो!

जमीला—मैं तो सिर्फ़ बदमिजाज ही कहती हूँ, और तुम तो मेरी एक-एक बात का रोना रोते फिरते हो। आज चाय नहीं मिली तो यह कहा है, कल यह भी कह देना कि बीवी खाने को नहीं देती।

सिराज—मगर यह तो ग़ौर करो कि मैंने रशीद की तरह उल्टी ख़ुशामद नहीं कराई।

जमीला—रशीद साहब ख़ुद बदनाम हो रहे हैं, तुम्हारी तरह नहीं कि ख़ुद अच्छे रहें और बीवी को बदनाम करते फिरें। उनकी तेज़ी तुम्हारे घुन्नेपन से अच्छी है।

सिराज—यह भी अपनी-अपनी क़िस्मत है कि बावजूद प्याली तोड़ने के वह अच्छे रहे और मैं बुरा। वैसा ही मैं भी होता तो पता चलता।

जमीला—दूसरे के घर पर कहते हुए शर्म तो नहीं आती कि चाय नहीं मिली? अब चले हैं बातें बनाने।

सिराज—तो क्या हुआ, आख़िर यहाँ तकल्लुफ़ ही क्या था?

जमीला—तो तुम ही पियो चाय, मैं तो हरगिज़ न पिऊँगी। और अब तुम हमेशा यहीं पिया करो चाय। मैं तो इस वक्त तुम्हारे साथ आकर पछताई।

[जमीला उठकर जाती है, सिराज उसके पीछे जाता है।]

सिराज—और चलीं कहाँ, सुनो तो सही। ठहरो तो, बात तो सुनो।

# रात गये

[कुछ दोस्त अज़ीज़ के मकान पर जमा हैं और ब्रिज हो रहा है।]

अज़ीज़—चलिये हज़रत, पास किया।

जुगल—हज़रत अज़ीज़ फ़रमाते हैं पास किया और यह बन्दए-नाचीज़ अर्ज़ परदाज़ है अच्छा चलिये टू नो ट्रम्प्स।

रशीद—अज़ीज़ साहब ने पास किया, जुगल साहब फ़रमाते हैं टू नो ट्रम्प्स और मैं बोला नो बिड।

अज़ीज़—तुम बोलो प्रेम, यानी आप हैं कहाँ ?

प्रेम—भई, वह आ रहा है अयाज़। आज मैंने बिल्कुल तै कर लिया है, इसके पड़ौस वाले वह मिर्ज़ा साहब हैं ना उनसे कह दिया है बस यहीं से तमाशा देखा जायगा।

जुगल—उसको आज देर तक रोके रखो।

अज़ीज़—और मालूम न होने पाये उसे। यार उसने तो वाक़ई नाक में दम कर दिया है।

रशीद—शश, आइये भाई साहब, आप ही का जिक्रे-खैर था।

[क़दमों की चाप]

अयाज़—भई माफ़ करना, ज़रा देर हो गई।

जुगल—बजा इरशाद हुआ, सात बज रहे हैं। यह तो हुई ज़रा-सी देर और बहुत देर तो ग़ालिबन बारह बजे से पहले न होती होगी। यह आप आज रहे कहाँ ?

रशीद—भाभी को किसी पार्टी, किसी ऐट होम या ज़नाना क्लब ले गये होंगे।

अयाज़—नहीं, ज़नाना क्लब से तो उन्होंने कब का इस्तीफ़ा दे दिया। वही जो सदारत वग़ैरा का झगड़ा हुआ था।

रशीद—तो अब क्लब का क्या रहा होगा, वह भी टूट जायगा।

अयाज़—जी हाँ, क्लब की सेक्रेटरी साहबा ने लिखा था कि आप

तो ख़फ़ा होकर बैठ रहीं। अब कहिये तो बन्द कर दिया जाय क्लब। तो उन्होंने उसी ख़त पर बरजस्ता यह शेर लिख दिया—

बुलबुल ने आशियाना चमन से उठा लिया
उसकी बला से बूम बसे या हुमा रहे

जुगल—भई अच्छी चुटकी ली भाभी ने और ख़ुद बुलबुल की बुलबुल रहीं।

अजीज—तो अब अयाज़ तुम रहोगे ना? मैं तो हुमा बनकर रह नहीं सकता। ज़रा आजकल मसरूफ़ हूँ। [क़हक़हा]

अयाज़—जबसे क्लब से इस्तीफ़ा दिया है अख़बारों के नुमाइंदे घर घेरे रहते हैं कि अपना बयान दीजिये, इस्तीफ़े की वजह बताइये, क्लब के हालात पर रोशनी डालिये। मगर वह अपना कोई बयान देने को तैयार नहीं हैं। और अच्छा ही है जी। इस क्लब-क्लब के झगड़े में उनकी तमाम इंशापरदाज़ी ख़ाक में मिलकर रह गई थी। अब आजकल तस्नीफ़ो-तालीफ़ (लेखन कार्य) का काम बड़े ज़ोर में हो रहा है।

जुगल—भाई अयाज़, एक बात तो है कि इस ग़रीब की शादी तुमसे बहुत ग़लत हुई वर्ना तो वह न जाने किस बला की औरत होती।

अजीज—तुमको ऐसी बीवी का मियाँ कहलाना ख़ुद भी मुनासिब मालूम होता है? अपने दिल पर हाथ रखकर बताओ कि क्या तुम ईमानदारी के साथ उस बेचारी के शौहर बनने के क़ाबिल थे?

अयाज़—मुझे तो ख़ुद इक़रार है कि शादी के मामले में मेरी क़िस्मत वाक़ई क़ाबिले-रश्क है। मगर एक बात है कि मैं बावजूद इन तमाम बातों के आज तक दबकर नहीं रहा। यह नहीं कि हमारे रशीद भाई की तरह रात घर जाने में ज़रा देर हो गई तो बेद की तरह काँप रहे थे।

रशीद—मेरी न कहो, तुम्हारी क़सम इस ज़िन्दगी से आजिज़ हूँ। बीवी क्या मिली है अतालीक़ (शिक्षक) मिली है। क्यों देर में आये, ताश क्यों

खेले, सिनेमा क्यों गये ? हर वक़्त तालिबे-इल्मों की तरह निगरानी फ़रमाती हैं और जब देखिये बात-बात पर लड़ने को मौजूद।

अयाज़—यह नतीजा है दर असल जहालत का। भई, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि अगर मुझको ऐसी बीवी मिल जाती या मैं भी तुम्हारी तरह बीवी से दबकर रहने लगता तो ज़िन्दगी से आजिज़ होने के बजाय कब का ख़ुदकुशी करके क़िस्सा पाक कर चुका होता। मगर ख़ुदा का शुक्र है मेरी ज़िन्दगी सही मानों में ज़िन्दगी है। मेरा घर जन्नत है, और यह सब कुछ दर-असल बीवी के दम से है।

अज़ीज़—[आवाज़ देकर] अरे छोटू आईना लाओ।

जुगल—या वहशत ! आईने का इस वक़्त क्या होगा ?

अज़ीज़—मेरा मतलब यह है कि इन हज़रत को वक़्तन-फ़वक़्तन आईना दिखा देना चाहिये ताकि यह अपनी हक़ीक़त से बेख़बर न होने पावें। और इनको यह मालूम होता रहे कि वह ग़रीब औरत किस क़दर क़ाबिले-रहम है, जो इनकी ज़ौजियत (पत्नी) में आजाने के बाद भी ज़िन्दा रहे।

अयाज़—यह कभी कहियेगा भी नहीं। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि आज ही जब मैं दफ़्तर से आया हूँ तो आप ग़ुस्लख़ाने से बाल खोले प्याज़ी रंग की साड़ी लहराती हुई तशरीफ़ लाईं। और सहन में क़रीब कुर्सी पर बैठकर बोलीं, 'आप जामाज़ेब बहुत हैं।'

जुगल—[ क़हक़हा मारकर ] यानी कितना ख़ूबसूरत मज़ाक़ किया है !

अज़ीज़—हम भी क़ायल हो गये।

रशीद—भाई अयाज़, आप बकने दीजिये इन लोगों को। हाँ तो फिर क्या हुआ ?

अयाज़—ये लोग समझ रहे हैं मज़ाक़। मैं तुमसे सच कहता हूँ। कि आज तक शादी के बाद से कोई दिन ऐसा नहीं ग़ुज़रा है कि उन्होंने सुबह उठकर मेरी सूरत न देखी हो।

प्रेम—और रात को ख़्वाब में उछल-उछल न पड़ती हों। [सबका क़हक़हा]

रशीद—लाहौल वला-क़ूवत! किस क़दर बदमज़ाक हैं आप लोग भी। आप मुझसे कहिये भाई अयाज़।

अयाज़—रशीद भाई, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मैं कोई ख़ूबसूरत आदमी नहीं हूँ। मगर एक शरीफ औरत को अपने शौहर की बदसूरती में हुस्न नज़र आता है तो इस पर किसी को हँसने का क्या हक़।

जुगल—मगर भाई इसमें तो शराफ़त से ज़्यादा तुम्हारी हिमाक़त को दख़ल है कि वह करती हैं तुमसे मज़ाक़ और तुम उसको सच समझे बैठे हो।

अज़ीज़—या तो फिर यह बात है कि भाभी को निहायत मोटे तालों के चश्मे की फ़ौरन ज़रूरत है।

रशीद—नहीं साहब, शरीफ औरत शौहर की परिस्तार होती है। क्यों अयाज़ भाई?

अयाज़—यक़ीन जानो कि जिसको फ़रेफ़्तगी कहते हैं ना वही उस औरत का हाल है मेरे साथ।

जुगल—तो उनके नज़दीक आप जामाज़ेब हैं?

अयाज़—यानी वह भी समझती है तो इसको आख़िर मैं क्या करूँ? आज ही कह रही थीं कि आप पर हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी लिबास दोनों अच्छे लगते हैं।

अज़ीज़—अंग्रेज़ी लिबास में तो भई माफ़ करना तुम अच्छे-ख़ासे बहरूपिये मालूम होते हो।

प्रेम—और हिन्दुस्तानी लिबास जब पहनते हो तो ख़ूबी यह होती है कि कोई चीज़ अपनी नहीं मालूम होती।

जुगल—अब इसी वक़्त अपने लिबास की तरतीब देख लीजिये कि यह जो छोटे-से सरे-अक़दस पर आपने तुर्की टोपी पहन रखी है ना मालूम होता है कि केतली पर किसी ने टी-कोज़ी रख दी है।

प्रेम—और शेरवानी आपकी दुआ से ऐसी है कि अगर इत्तेफ़ाक़ से आपकी तन्दुरुस्ती ऐसी हो जाय कि आप अपने से दोगुने हो जायें तो भी फ़िट रहेगी।

रशीद—मतलब आप हज़रात का मुख्तसरन गोया यह हुआ कि भाई साहब जामाज़ेब तो नहीं अलबत्ता फ़बतीज़ेब ज़रूर हैं। मगर मैं इसे मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। अच्छी-खासी आदमियों की-सी सूरत है।

अजीज़—बस यही ग़लत है। और इनके मुताल्लिक़ सबसे बड़ा बोहतान है।

अयाज़—अच्छा साहब, अब अगर मैं तख्तए-मश्क़ बन चुका हूँ तो इजाज़त दीजिये। आप लोगों के पास तो जिसको बेवक़ूफ़ बनना हो वह बैठे।

जुगल—जाने दो भाई देर हो जायगी। कल ही बेचारे पर झाड़ पड़ चुकी है।

अयाज़—झाड़, क्या मानी झाड़ के?

अजीज़—कल देर हो गई थी ना तो भाभी ने खबर ज़रूर ली होगी।

अयाज़—जी, मैं रशीद तो हूँ नहीं कि नौ बजे और उनको इख्तेलाज शुरू हुआ। देर हो गई थी तो क्या हुआ? वह तो खुद कहती हैं कि किसी क्लब के मेम्बर बन जाओ। तफ़रीह करो! मियाँ, वह पढ़ी-लिखी समझदार औरत है, रोशन-ख़याल है। और ज़िन्दगी को बनाकर बसर करना जानती हैं।

रशीद—[ठण्डी साँस लेकर] हाँ भाई, ये भी मुक़द्दर की बातें हैं। एक हम हैं कि घर गये और टाँग ले ली गई।

अयाज़—कल रात को जब मैं पहुँचा हूँ तो मसहरी के सरहाने

लैंप रोशन था और 'दीवाने-ग़ालिब' का मुतालिया हो रहा था। मुझको देखते ही कहने लगीं—

सुबह करना शाम का लाना है जूए-शीर का

रशीद—भाई साहब, देखिये यह है फ़र्क़ एक जाहिल और पढ़ी-लिखी औरत का। एतराज उन्होंने भी किया मगर किस खूबसूरती के साथ। और मेरी घर वाली ने देखते ही कहा, 'क्यों आये अब भी, एक दम से सुबह ही को आ जाते ना ?'

अयाज़—अरे तौबा ! मुझ से तो अगर इस तरह कह दें तो जनाब माफ़ कीजियेगा मिज़ाज ठिकाने लगा दूँ। और सुनिये उन्होंने कहा था कि वापसी में 'दीवाने-जौक़' की ज़रा ख़बर लें। भई मैं यहाँ की गड़बड़ और ख़िज कमबख्त की वजह से भूल गया। अब जो उन्होंने पूछा कि 'लाये दीवाने-ज़ौक़ ?' तो मैं मुस्करा कर चुप हो गया और कोई औरत होती तो फ़ौरन नाक-भौं चढ़ाकर बैठ रहती मगर नेकबख्त ने ज़ेरे-लब तबस्सुम के साथ यह शेर पढ़ दिया—

तिरे वादे पर जिये हम तो यह जान झूट जाना
कि ख़ुशी से मर न जाते अगर एतबार होता

रशीद—भई सुभानअल्लाह ! क्या बरजस्तगी है ! मालूम होता है कि इस मौक़े के लिए शेर कहा गया था।

जुगल—वह तमीज़दारी और सलीक़े की बात है।

अज़ीज—भाभी का रुझाने-तब्अ (झुकाव) शाइरी की तरफ़ मालूम होता है।

अयाज़—शेर तो ख़ैर वह ख़ुद भी कहती हैं। अभी चार-पाँच रोज़ हुए उनकी ब्याज़ पर मैंने यह शेर देखा था—

रानाइए-ख़याल तसव्वुर है आपका

और भी ज़रा देखना किस रुख़ से मिसरा लगाया है—

शाइस्तए-ग़ुरूर बनाया है आपने

रशीद—इस शेर से तो कुहना-मश्क़ी और उस्तादी टपक रही है।'

अयाज—और नस्र में भी उनका रंग सबसे अलग है। आज ही वह अपनी किताब लिखते-लिखते जो गई तो मैंने जा-बजा उसको देखा, एक जगह लिखा था : 'तुम निगाहों के क़रीब तो हो सकते हो मगर रूह को तुम पर यक़ीन है। और दिल तुम पर ईमान ला चुका है। क्या यह भी मुहब्बत की कुफ़् सामानी है?'

जुगल—और तो खैर कुछ नहीं, अगर तुम इस जुमले का तर्जुमा कर दो अपनी जबान में तो दो पैकेट चाकलेट के अभी दिये।

अजीज—चलो, दो पैकेट मेरी तरफ़ से भी।

अयाज—भई तुम लोग तो हो मसखरे और मैं लग जाता हूँ बातों में। आज मैं वादा कर चुका हूँ कि 'दीवाने-जौक़' जरूर लेकर आऊँगा। लिहाजा मैं तो चला। [घड़ी देखकर] उफ़्फ़ोह साढ़े दस, अच्छा भई रुखसत।

अजीज—लो सिगरेट तो लो।

अयाज—शुक्रिया! [सिगरेट जलाने में जल्दी से कश लेकर चला जाता है।]

अजीज—इसका दिमाग़ वाक़ई चल गया है।

जुगल—और चला हुआ कब नहीं था? पहले रोज एक नई मुहब्बत के अफ़साने सुना-सुनाकर कान पका दिये थे। अब बीवीनामा सुना-सुनाकर नाक में दम कर दिया है।

रशीद—अच्छा देखो, वह गया सड़क-सड़क। हम लोग इधर से निकल जायें, शार्ट कट से। उससे पहले पहुँचना है ना।

प्रेम—तो चलो ना, वह तो दूर निकल गया। सीधा घर ही जा रहा है।

अजीज—आओ चलो।

[सब उठकर जाते हैं। मिर्जा साहब के मकान में सब खामोशी के साथ जमा हो जाते हैं और सरगोशियों में बातें करते हैं।]

रशीद—यही है नीचे अयाज़ का मकान।

जुगल—अभी पहुँचा नहीं है शायद।

अज़ीज़—वह क्या आ रहा है लम्बे-लम्बे क़दम उठाता हुआ। वही है ना ?

प्रेम—हाँ, हाँ वही है, चुप रहो।

[अयाज़ दरवाज़े में हाथ डालकर कुण्डी खोलता है। कुण्डी की आवाज़ पर बीवी बुलंद आवाज़ से पूछती है।]

पत्नी—कौन है ?

अयाज़—मैं ही था।

पत्नी—अब आधी रात को भी आने की आख़िर ज़रूरत ही क्या थी ? घर जाता मुआँ चूल्हे में। बीवी के मुँह को झुलसा तुम अपनी रंगरेलियों में रहते।

अयाज़—ज़रा सरकार काम से गया हुआ था डिप्टी साहब के यहाँ।

पत्नी—रोज़ ही जाते हो तुम डिप्टी साहब के यहाँ। अब आये हैं वहाँ से मुझे चलाने। डिप्टी साहब के यहाँ गये थे। तुमसे छूट चुका यह सैलानीपन। मगर मुझ से भी आधी-आधी रात तक जागा नहीं जा सकता।

अयाज़—बस अब कल से नहीं जाना है। आज काम ख़त्म हो गया सब।

पत्नी—चलो हटो, रोज़ के तुम्हारे यही बहाने हैं। यहाँ डर के मारे मुआँ बुरा हाल है। सारा घर पड़ा हुआ साँय-साँय कर रहा है और मैं एक अकेली जान। तुमको ऐसे ही घूमना-फिरना है तो मुझे पहुँचा दो अपने घर। फिर घूमो खूब रात-रात भर।

अयाज़—अरे साहब, तो अब हो गया। तुम तो एक बात के पीछे पड़ जाती हो। कह दिया अब कल से नहीं जाऊँगा।

पत्नी—कल भी तो तुमने यही कहा था। आधी-आधी रात तक

जागूँ और दिन भर घर के कामों में मरूँ। आदमी न हुई मुई जिन हो गई। कोई घर को आकर मोस ले जाये तो मैं औरत जात क्या कर सकती हूँ?

अयाज—तौबा है, अब माफ़ भी कर दो। कोई मैं सैर-सपाटे में तो था नहीं कि तुम इस तरह झिड़क रही हो।

पत्नी—ऐ मैं खूब जानती हूँ तुम्हारी इन बहाने बाज़ियों को। कभी डिप्टी साहब के यहाँ रह गये। कभी वह कौन हैं—मुए निस्पट्टर साहब, उन्होंने रोक लिया। बेचारे आधी-आधी रात तक बस इन्हीं कामों में रहते हैं।

अयाज—तो गोया मैं झूठ बोल रहा हूँ। कभी तो तुमने किसी बात का यक़ीन किया होता? इसलिए तो कहता हूँ कि यह बदगुमानी तुम्हारी खता नहीं। तुम्हारी जहालत की ख़ता है।

पत्नी—तो किसने तुम्हारे हाथ जोड़े थे कि मुझ जाहिल को ले आओ अपने घर? तुमको तो पहले से मालूम था कि मैं कोई मिडिल पास नहीं हूँ। फिर क्यों की थी शादी?

अयाज—बजाय इसके कि शौहर दिन भर का थका-मारा घर आया था उठकर खाने-पीने की फ़िक्र करतीं, मुँह-हाथ धोने को पानी रखतीं तुमने यह लेक्चर देना शुरू कर दिया।

पत्नी—हाँ, शौहर साहब रात-रात भर रतजगा करायें और जब सहरी के वक़्त आयें तो इस तरह नाचती फिरूँ। मैं तुम्हारी फ़िक्र किया करूँगी। तुम अलबत्ता मेरी वजह से आधी-आधी रात तक ग़ायब रहते हो।

अयाज—ज्यादा-से-ज्यादा अब बजे होंगे ग्यारह। इसका नाम है आधी रात। मगर तुमको तो आदत पड़ गई है बकने की। क्या करो इस बकवास के मर्ज़ से मजबूर हो।

पत्नी—हाँ हाँ, मैं तो बकवास कर रही हूँ। अपने पैरों में बँधे

हुए सनीचर को नहीं देखते और बकवास है मुझको। दोस्तों में बैठे हुए वही मुए ताश-पत्ते हो रहे होंगे। वह क्या कहलाता है निगोड़ मारा इर्ज-ब्रिज।

अयाज़—फिर वही? यक़ीन तो तुमको आ ही नहीं सकता चाहे मैं अपनी गर्दन काट कर रख दूँ। कौन मरदूद ताश खेल रहा था? और किस कम्बख्त ने आज दोस्तों की सूरत भी देखी है। यह साहब हम दिर के थके-हारे घर में आये हैं।

पत्नी—ऐ मेरा क्या है! न मानोगे तो आज नहीं कल खुद ही पछताओगे। मैं मुई आधी-आधी रात तक सरम-सुहमकर और जाग-जागकर अपनी जान पर तो खेल ही रही हूँ। मगर यह बताये देती हूँ कि तुम्हारे भी ये ढंग घर बनाने के नहीं हैं।

अयाज़—तमाम दुनिया में बीवी की क़ाबिलयत का ढिंढोरा पीटते-फिरते हैं। जिसको देखिये, वह मुझ नामुराद की क़िस्मत पर रश्क करता है। और मैं हूँ कि खुदा दुश्मन को भी ऐसा शौहर बनने से महफ़ूज रखे!

पत्नी—यह भी मुआ झूठ अगर दोस्तों से कहते हो तो झूठ और नहीं कहते हो तो मुझसे झूठ बोल रहे हो।

अयाज़—झूठा तो खैर मैं हूँ ही। मगर किसी तरह ज़िन्दा भी रहने दोगी मुझ कम्बख्त को। दोस्तों को कैसी-कैसी बीवियाँ मिली हैं। रशीद की बीवी को देखिये, पढ़ी-लिखी सुगढ़, नाक-नक़्शे से दुरुस्त और फिर सही मानों में शरीफ़ क़िस्म की बीवी।

पत्नी—और मुझमें सब ऐब हैं! यह भी तुम जानते थे कि मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, खूबसूरत नहीं हूँ, फूहड़ हूँ। अलबत्ता शराफ़त को जो तुम कह रहे हो तो जो तुम्हारा खानदान वह मेरा।

अयाज़—हरेक यह जानता है कि अयाज़ की बीवी कितनी लायक़ और क़ाबिल औरत है।

पत्नी—क़ाबिल नहीं तो वह, बड़ी धूम थी कि साहब पढ़ाया करूँगा। किताब लाये, तख़्ती लाये और मालूम होता था कि बस अब आलिम-फ़ाज़िल ही तो कर देंगे यह मुझे। तख़्ती पड़ी हुई मुई भिनक रही है। और किताब भी जाने क्या हुई निगोड़ी मारी।

अयाज़—पढ़ाता क्या ख़ाक तुमको! दिमाग़ में भेजा हो तो पढ़ो भी मगर वहाँ तो भरी हुई है घास।

पत्नी—बस घास भरी हुई है कि तुम्हारे चलत्तरों में नहीं आई कि तुम आधी रात को आकर कह दिया करो कि मैं सरकारी काम से गया हुआ था और मैं यक़ीन कर लिया करूँ। चले हैं वहाँ से घास भरी हुई है।

अयाज़—अजी लानत भेजो तुम मुझ पर। मैं तो बहाने ही करता हूँ। यही सही, अब जो तुमसे हो सके वह कर लेना मेरा। जितना दबो बेचारी सर ही चढ़ी जाती हैं।

पत्नी—तो मैंने भी कह दिया है कि मैं अकेली इस घर में नहीं रह सकती। तुम्हें अगर ये सरकारी काम हैं, सैर-सपाटा है और अगर इतनी ही देर में आना है तो या तो मुझे मेरे घर पर रखो या अपने यहाँ से किसी को बुला कर यहाँ रखो। समझे कि नहीं?

अयाज़—अच्छा साहब, समझ गये। अब कुछ खाने को भी मिलेगा या यों ही पड़ रहूँ मुँह लपेट कर।

पत्नी—उठ तो रही हूँ। तुम जब तक मुँह-हाथ धोलो, या मैं ही हाथ-मुँह धुला दूँ? [दोनों के क़दमों की चाप]

[उधर सरगोशियों में सब दोस्त बातें करते हैं।]

जुगल—देखा तुमने?

अज़ीज़—मजा आ गया। कमाल है भई इस शख़्स का झूठ भी।

प्रेम—वह तमाशा दिखाया है रशीद तुमने कि याद रहेगा।

रशीद—तमाशा अभी कहाँ दिखाया है, तमाशा तो अब होगा ज़रा ठहरो।

जुगल—यानी अभी कुछ बाक़ी है और होने को?

रशीद—असल तमाशा तो अब होगा। देखते रहो ज़रा। अब मैं जाकर इन हज़रत को आवाज़ देता हूँ और कहूँगा दिन भर डिप्टी साहब तुम्हारा इन्तेजार करते रहे मगर तुम न जाने कहाँ ग़ायब थे। कल से बराबर रास्ता देख रहे हैं, तमाम सरकारी काम रुके पड़े हैं।

जुगल—अरे भाई यह तो बहुत सख्त हमला होगा। वह मार डालेगी इन हज़रत को।

अज़ीज़—नहीं नहीं, ठीक है। झूठे को घर तक ज़रूर पहुँचाना चाहिये। उसे यह भी तो मालूम हो जाये कि हम लोग इतने बेवक़ूफ़ नहीं जितने सूरत से नज़र आते हैं।

प्रेम—मगर यह समझ लो कि फिर एक दोस्त गया अपने हाथ से।

रशीद—तौबा करो। मियाँ साँप को मारना है ख़ाली। क्या मैं इतना बेवक़ूफ़ हूँ कि लाठी भी तोड़ दूँ?

अज़ीज़—ख़ैर कुछ भी हो किसी ख़तरे की वजह से कोई लतीफ़ा रोका नहीं जा सकता। आओ चलें।

प्रेम—तो क्या सब चलेंगे?

रशीद—हाँ हाँ, हर्ज ही क्या है। आओ ना।

[सबके जाने की आवाज़, थोड़े अवकाश के बाद अयाज़ के दरवाज़े पर दस्तक]

अयाज़—कहाँ गईं, ज़रा देखना कोई हमारे यहाँ है?

पत्नी—यह इस वक़्त कौन आया? [आवाज़ बुलंद करके] ऐ कौन है?

रशीद—अयाज साहब हैं, मैं डिप्टी साहब के यहाँ से आया हूँ।

उन्होंने भिजवाया है कि दो दिन से आख़िर'''[अयाज़ दौड़कर बाहर निकलता है।]

अयाज़—कौन रशीद, ख़ैरियत तो है ? और यह डिप्टी साहब का क्या क़िस्सा है ?

रशीद—[जान-बूझकर ज़ोर-ज़ोर से बोलता है] भई, डिप्टी साहब सख्त परेशान हैं कि तुम दो दिन से कहाँ ग़ायब हो। आज भी इन्तेज़ार करते रहे, तमाम काम''''''।

अयाज़—[बात काटकर] यह क्या वाहियात है ! आख़िर यह इस वक़्त सूझी क्या है ? [अंदर से दरवाज़े पर दस्तक]

रशीद—देखो शायद अंदर कोई बुला रहा है। [अयाज़ अंदर जाता है।]

पत्नी—अब आख़िर उनको कहने क्यों नहीं देते हो। चोरियाँ तो इसी तरह खुला करती हैं और भाँडा तो यों ही फूटता है।

अयाज़—[घबराकर, हकलाते हुए] यानी तुम, तुम आख़िर तुम आ गईं ना इन बदमाशों के बहकाने में। यह सब मज़ाक़ कर रहे हैं।

पत्नी—और क्या बहकाने ही को तो वह बेचारे भी आधी रात को आये होंगे ? मैं कहती हूँ कि अब तो आँखों में धूल मत झोंको।

[बाहर से आवाज़]

रशीद—अरे भई, कहाँ बैठ रहे ?

अयाज़—आया भाई। [आहिस्ता से] मैं तुम्हें सब समझा दूँगा। तुम जाओ, जाकर लेटो। [बाहर निकलता है] वह भाई बात यह थी कि तुम्हारी भावज पूछ रही थीं कि आख़िर रशीद साहब को इस वक़्त क्या सूझी है। आधी रात को यह लगाई-बुझाई करने आये हैं।

रशीद—और सलाम भी कह दिया था भाभी को ?

अयाज़—वह ख़ुद सलाम कह रही थीं। बल्कि उन्होंने तो कहा था

कि मुझे तो रशीद साहब से बड़ा काम लेना है। भाई उनका मतलब यह है कि उनकी किताब का मुक़द्दमा तुम लिख दो।

रशीद—वह कभी नहीं कह सकतीं। उनको मालूम है कि मैं एक ग़ैरअदबी आदमी हूँ। दूसरे मुक़द्दमा लिखवाना होता तो अभी से खुशामद करतीं। पान तक को तो नेक बख़्त ने पूछा नहीं!

अयाज—ओहो, हाँ शायद पान ही बना रही हैं। अभी लाया। [अंदर जाता है।]

रशीद—[चुपके से] इधर आओ ज़रा, अंदर का तमाशा तो देखो।

अज़ीज़—ऐसी रात में ऐसा सफ़ेद झूठ। वल्लाह कमाल है।

रशीद—देखो प्रेम, इस सूराख़ से झाँको। अज़ीज़, बढ़ो ना आगे।

[सब अंदर झाँकते हैं।]

अयाज—ख़ुदा के लिए आहिस्ता बोलो। अगर सुन लिया उसने तो मेरा घर से निकलना दुश्वार कर देगा।

पत्नी—तो मैं क्या करूँ, मुझसे इस वक़्त पान नहीं बनाये जायेंगे। तुम ख़ुद बनालो। वाह, तुमने तो ख़ूब तँबोलन मुक़र्रर किया है।

अयाज—अच्छा, अच्छा भाई मैं ख़ुद बनाये लेता हूँ। मगर ख़ुदा के लिए इस वक्त ज़रा चुप रहो। फिर रात भर जितना चाहे चीख़ लेना।

पत्नी—दफ़्तर से नहीं आये हैं ये तो आख़िर इस वक़्त यहाँ क्यों मरने को आ गये। क्या दिमाग़ ख़राब है कुछ या कोई ख़ाना-बदोश है मुआ।

अयाज—तौबा है, ख़ुदा के लिए ज़रा ज़बान को क़ाबू में रखो। तुम मुझको कहीं का न रखोगी। मैंने ख़ुद ही पान भी इसीलिए बनाये हैं।

[बाहर निकलता है।]

रशीद—बेचारी को नाहक़ इस वक़्त तकलीफ़ दी। लो भाई जुगल, खाओ भाभी के हाथ के पान, लो अज़ीज़।

अयाज़—यानी पूरा लश्कर मौजूद है। शाई वह बहुत-बहुत सलाम कर रही हैं और कहती हैं कि रशीद साहब से आज भावज की लड़ाई ज़रूर हुई है नहीं तो इस वक़्त क्यों आते।

रशीद—ख़ैर, वह बेचारी जाहिल औरत क्या करती। अलबत्ता तुम अपनी ख़ैर मनाओ और भावज का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा करना। अच्छा भाई चले अब।

अयाज़—यार क्यों मुझे अज़ाब में मुब्तिला करके जा रहे हो? वह डिप्टी साहब वाली फुलझड़ी जो छोड़ी है उसके मुताल्लिक़ तो कुछ कहते जाओ।

जुगल—यानी तुम भी बीवी से इतना डरते हो कि ज़रा से मज़ाक में सटपटा गये?

अयाज़—नहीं, ख़ैर मज़ाक़ तो वह ख़ुद समझ गई होंगी। मगर मैं कहता हूँ शक भी आख़िर क्यों रहे।

प्रेम--भई, अब नहीं सुना जाता। ऊपर आस्मान है और इतने झूठ का बोझ तो ज़मीन भी नहीं उठा सकती।

अयाज़—क्या मतलब आपका?

रशीद—भाई, ख़ुदा के लिए रहने दो। बख़्शो ग़रीब को। अभी आया है डिप्टी साहब के यहाँ से और रात भर बीवी से मेहर बख़्शवाना अलग है।

अयाज़—तो यह कहिये आप लोग बड़ी देर से यहाँ खड़े थे। और हम लोगों का मज़ाक़ सुन रहे थे।

जुगल—बस भाई, यह हद हो गई। अगर यह मज़ाक़ था आप दोनों मियाँ-बीवी का तो ख़ुदा ही तुम्हारा हाफ़िज़ है।

प्रेम—इसकी बोटी-बोटी, काट डालो मगर झूठ से बाज़ थोड़ी आयगा।

जुगल—अच्छा भाई जाओ। अभी तुमको बहुत कुछ मज़ाक करना है।

रशीद—मगर ज़रा इन हज़रत के सर की पैमाइश लेते चलो। सुबह नापकर देखेंगे कि हम लोगों के जाने के बाद कितना मज़ाक और हुआ।

[सबका क़हक़हा]

———

# समझौता

[कुछ बच्चे शोर मचा रहे हैं। खेल-कूद, दौड़-धूप, उछल-फाँद हो रही है। मसूद दाखिल होता है और बच्चों को डाँटता है।]

मसूद—क्या आफ़त मचा रखी है? क्या क़यामत है, मालूम होता है कि हंगामा बर्पा है। बाहर जाकर खेलो।

बेगम—बस ये जिन्दगी भर खेलते ही रहेंगे। न पढ़ने के, न लिखने के, और लिखें पढ़ें तो क्या। कोई लिखाये-पढ़ाये तो लिखें-पढ़ें भी। तुमको तो जैसे कोई ख़याल ही नहीं है।

मसूद—आख़िर मैं किस-किस बात का ख़याल करूँ? कहिये तो कचहरी की नौकरी छोड़कर आपके साहबजादों की मुल्लागीरी शुरू कर दूँ!

बेगम—हाँ और क्या! जो लोग कचहरी में नौकर होते हैं उनके बच्चे भला कहीं पढ़ सकते हैं।

मसूद—अब तुमसे कौन बहस करे। बात कहकर आदमी ख़तावार हो जाता है। मैं तो यह कहने आया था कि सलीम का पर्चा आया है, वह उनकी बीवी आ रही हैं अभी।

बेगम—सलीम भी तो हैं तुम्हारी कचहरी में नौकर। और माशा अल्लाह हमसे ज्यादा बच्चे भी हैं। मगर सब बच्चे ढंग से पढ़ रहे हैं—बड़ा सातवें में है, उससे छोटा पाँचवें में, तीसरा बच्चा शायद चौथे में। चौथे को घर पर मास्टर पढ़ाता है। और यहाँ यह हाल है कि अभी तक किसी ने किताब को हाथ नहीं लगाया।

मसूद—अच्छा साहब अच्छा! सलीम बड़े अच्छे हैं और मैं बहुत बुरा हूँ। मगर अब इस ज़िक्र को छोड़कर ज़रा ये फैली हुई चीजें समेट दो। वे लोग आते ही होंगे। उनका घर जाकर देखो तो हर वक़्त साफ़-सुथरा नज़र आता है।

बेगम—उनको हर वक़्त सफ़ाई की ही फ़िक्र रहती है। यह नहीं

कि तुम्हारी तरह कचहरी से आये तो मोजे एक तरफ़ उछाल दिये और जूता एक तरफ़। टोपी खूँटी पर टाँग दी तो शेरवानी क़ालिब पर डाल दी। किसी बात का ढंग ही नहीं है।

मसूद—यानी यह भी मेरा ही क़सूर है। बहुत अच्छा साहब, बहुत अच्छा। मैं ही ख़तावार सही। मगर मेहरबानी फ़रमाकर जरा इस वक्त मेरी ख़ताएँ न गिनवायें। बच्चों के कपड़े बदलवा दीजिये और ख़ुद भी अगर ज़हमत न हो तो मुँह-हाथ धो डालिये। आप देखती हैं कि सलीम के बच्चे कैसे साफ़-सुथरे रहते हैं। और उसकी बीवी को जब देखिये कंघी-चोटी से दुरुस्त नज़र आती है।

बेगम—वह क्यों न दुरुस्त रहेंगी! मियाँ भी तो ऐसा ख़्याल रखता है कि जब देखिये साबुन, तेल, क्रीम, स्नो और न जाने क्या-क्या ख़ाक-धूल लाता रहता है। तुमको भी कभी तौफ़ीक़ हुई? तीन दिन से रूखे बाल लिये फिर रही हूँ, मगर तुमको भी ख़याल आया कि लाओ कचहरी से लौटते में तेल ही ले चलें।

मसूद—मैं समझा कि तुमने तेल छोड़ ही दिया है, मैं तो मुद्दतों से इसी तरह देख रहा हूँ। अरमान रह गया कि कभी कंघी करते हुए तुमको भी देख लूँ।

बेगम—चलो हटो, अब चले हैं मुझे बनाने। अरमान रह गया! मैं कहती हूँ कि क्या दिन-रात बैठी हुई सूखे झोंटे नोचा करूँ?

मसूद—अच्छा अच्छा ख़ैर, मेरी ही ग़लती सही। मैं ही आपके सर के बालों तक का जिम्मेदार हूँ। मगर ख़ुदा के वास्ते इस वक़्त बहस में वक़्त न गुज़ारो। बच्चों के कपड़े बदलवादो वर्ना सलीम और जमीला दोनों नाम रखेंगे। वाक़ई शर्म की बात है कि वह मुझसे कम तनख़्वाह पाता है मगर किस शान से रहता है।

बेगम—तुम कहो इसको शान! मैं तो इसको बनावट समझती हूँ

कि पेट काट-काटकर दिखाने का टीम-टाम दुरुस्त किया जाये। हमारे यहाँ माशाअल्लाह खाने का खर्च तो है।

मसूद—बस खर्च ही खर्च है वर्ना, खैर छोड़ो इस बहस को। बच्चों को बुलाओ ना। अरे किधर गये महमूद, मक्सूद, मशहूद।

बच्चों की आवाज़—जी, जी आया। अब्बा मियाँ।

मसूद—चलो इधर फ़ौरन। हाँ बेगम, अब उठकर ज़रा इनके हाथ-मुँह धुलाकर बाल-वाल ठीक कर दो। यहाँ की चीज़ें मैं समेटे देता हूँ। हटाओ इस पानदान को, यह क्या बुर्क़ा है? यह भी मेरा ही होगा। साड़ी इधर गई, यह एक मोज़ा किसका है। खैर होगा भी। तिलेदानी, गठरी, मैला पाजामा, चादर, तकिये कािलाफ़। यह किताब कौनसी है लाहौल वला क़ूवत! जन्तरी। गई तो देखो, तौबा है। [बच्चे आते हैं।]

बेगम—क्या शक्ल बनाई है तुम लोगों ने भी। कभी जो तुम आदमियों की सूरत रहो। क्यों रे पाजामा कहाँ फाड़ा? और यह महमूद सारा कुर्ता पान से रँगा गया है। नंगे सर, नंगे पैर मालूम होता है कि अच्छे-खासे भिखमंगे, मुए। बिल्कुल बाप को पड़े ही तुम लोग।

मसूद—कभी-कभी बच्चों को इसी क़तह से पास बिठाकर आईना भी देख लिया करो।

बेगम—क्या मैं झूठ कह रही हूँ, तुम खुद देख लो। वही बेढंगापन है कि नहीं। और यह मक्सूद तो हूबहू बस तुम्हारा ही नक़्शा है—एक पायचाँ ऊँचा और एक पायँचा नीचा, पैरों पर मनों गर्द जमी हुई, मुँह जैसे बिल्लियों ने चाटा हो। काहे को ऐसे लड़के होते होंगे किसी के? चलो तुम सब नल के नीचे।

मसूद—नल पर जा रही हो तो तुम भी लगे हाथों मुँह धोती आना। इतने मैं यहाँ सब ठीक कर रहा हूँ।

बेगम—तो नल पर मैं कब जा रही हूँ, वो खुद धोलेंगे हाथ-मुँह

कोई बच्चे हैं—आठ-आठ, नौ-नौ के लूँबड़ ! इनके हाथ-मुँह मैं धुलाऊँ ? कच्ची-कच्ची कौवा खाये, दूध-मलीदा तू भैया खाये। मुझे ये चोंचले नहीं आते ।

मसूद—मतलब यह था कि वह क़मबख़्त नल पर जाकर और भी आफ़त मचा देंगे, एक-दूसरे से लड़ेंगे और जिस्म की ख़ुश्क मिट्टी पर पानी छिड़ककर कीचड़ टपकाते हुए वापस आजायेंगे ।

बेगम—तो अब तुम ही जाओ, मेरे तो हाथ-पैर इस वक़्त सनसना रहे हैं, भेजा है कि मुआँ टपक रहा है। सर तक तो उठाया नहीं जाता।

मसूद—तो यहाँ का यह आख़ोर कौन समेटेगा ? बैठने का तख़्त क्या है मालूम होता है कबाड़िये की दूकान है। अब तुम ही बताओ, यहाँ भला इस चूहेदान की क्या तुक है ? और यह अँगीठी की जाली यहाँ क्यों तशरीफ़ फ़रमा है ।

बेगम—तौबा है, बच्चे के घर में यही होता है। दिन भर तो कौवे-हफनी की तरह बच्चों के पीछे लगे-लगे करती रहती हूँ। वह न मानें तो आख़िर क्या करूँ ? तुम चलो यहाँ से, मैं सब समेटे देती हूँ। [बच्चे के गिरने की आवाज़ और साथ-ही-साथ रोना ।]

मसूद—लीजिये, देखा आपने ? मैंने कहा था कि नल पर जाकर ये लोग ख़ुदा जाने क्या करेंगे। साहबज़ादे सर से पैर तक कीचड़ में लतपत भूत बने खड़े हैं। [चीख़कर] यह आख़िर हुआ क्या ?

महमूद—अब्बा मियाँ, मैं अलग खड़ा हूँ। मैं कुछ नहीं बोला।

बेगम—तो उतार कमबख़्त यह भीगी हुई लाबी।

मसूद—हमारे घर की क़िस्मत में बेढंगापन लिखा है तो उसको कोई क्या करे ? औलाद भी है तो कमबख़्त ऐसी !

बेगम—मुझ ही को उठना पड़ेगा, चाहे कमबख़्त तबियत अच्छी हो या न हो। मगर बग़ैर उठे तो कोई काम ही नहीं हो सकता, आजिज़ हूँ इस निगोड़ी मारी ज़िन्दगी से।

मसूद—अरे साहब तो मैं जा रहा हूँ। मगर जी जलता है इन

बातों पर। अगर ये बच्चे पहले से साफ़ होते तो इस वक्त नहलाने की जरूरत न पड़ती। मगर मैं तो देख रहा हूँ कि सिर्फ़ हाथ-मुँह धुलाने से काम न चलेगा। हाथ-मुँह का मैल अगर छूट भी गया तो चितकबरे नजर आयेंगे।

बेगम—ऐ और क्या, चितकबरे नहीं तो गलदुम, मालूम होता है जैसे जानवर के बच्चे।

मसूद—अजी जानवरों से भी बदतर हैं। अब क्यों कहलवाओगी? जानवर भी अपने बच्चों को चाट-चाटकर साफ़ रखते हैं। मगर ये तो मालूम होता है कि जैसे जिन्दगी भर नहाये ही नहीं हैं।

बेगम—नहाये क्यों नहीं? अभी पिछले ही महीने जब मैं नहाई थी तो इनको भी नहलाया था।

मसूद—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह! क्यों न वो लोग दलद्दर नजर आयें जिनको एक-एक महीना गुजर जाये।

बेगम—ऐ तो मुझे क्या मालूम था कि बच्चों को पानी का कीड़ा बनाकर रखा जाता है। मेरा क्या है मैं भी रोज उनको नल के नीचे खड़ा कर दूँगी। मगर अपनी तो खबर लो।

मसूद—मेरा क्या है मैं तो काम-काजी आदमी हूँ, रोज कचहरी। और आराम का एक दिन इतवार का वह भी नहाने-धोने के नज्र कर दूँ तो आखिर आराम किस दिन करूँ? फिर भी किसी-न-किसी तरह नहाता ही रहता हूँ। मगर तुम लोग तो, [दरवाजे पर दस्तक की आवाज] देखा तुमने वो लोग आ गये।

बेगम—इसीलिए कहती थी कि······[फिर दस्तक]

मसूद—आहिस्ता बोलो! [बुलन्द आवाज से] कौन है?

आवाज—मैं हूँ सलीम।

मसूद—आया भाई अभी आया। [आहिस्ता से] अब ये लड़के यों ही रहे। लाहौल वला क़ूवत!

बेगम—तो फिर मैं क्या करूँ ?

मसूद—हाँ, करूँ तो जो कुछ मैं करूँ ! [दस्तक—'अरे भई खोल भी चुको !']

[मसूद दरवाजा खोल देता है। सलीम अपनी बीवी के साथ आता है।]

सलीम—आदाब बजा लाता हूँ भाभी।

मसूद—ख़ैर, ख़ैर हो गया आदाब। आओ वह बेचारी भी तुम्हारी वजह से खड़ी हैं। भाभी, तुम तो इधर निकल लाओ।

नजमा—जी हाँ ! ओहो, ये बावा लोग नल के नीचे खेल रहे हैं। मगर पानी में ज्यादा खेलना ठीक नहीं।

सलीम—हाँ मसूद, इनको नल के नीचे से हटाओ जाकर।

मसूद—बड़ी देर से तुम्हारी भावज से कह रहा हूँ, मगर वह तो गोया हर बात मजाक़ समझती हैं।

नजमा—भावज ? इसका भावज से क्या ताल्लुक़ ? क्या बच्चों को भावज ही ठीक करें तो वो ठीक होंगे ?

सलीम—समझ में नहीं आता। यानी आपने यह काम भावज पर छोड़ रखा है, क्यों हज़रत ?

मसूद—करता तो सब कुछ मैं ही हूँ। मगर तुम ही बताओ यह काम मेरे करने का है, मैं दिन भर मरूँ उसके बाद······।

सलीम—[बात काटकर] मैं यह कहता हूँ कि कचहरी में सिर्फ़ तुम ही तो नहीं मरते, मैं भी आख़िर तुम्हारे साथ हूँ। मगर बच्चों की देखभाल आख़िर करता ही हूँ।

बेगम—ऐ है बस यही न कहना। इनसे तो अगर जरा भी कह दिया जाय कि किसी बच्चे के कपड़े बदलवा दो तो आफ़त मचा दें। क़यामत बर्पा कर दें और सारा घर सर पर उठा लें कि साहब मेरा यह काम नहीं है। मैं दिन भर कचहरी में सर खपाता हूँ, दिमाग़ का काम करता हूँ और क़लम से चक्की पीसता हूँ।

मसूद—तो क्या ग़लत कहता हूँ ? तुम्हारा मतलब तो यह है कि मैं दिन भर सरकारी काम करूँ और उसके बाद घर पर आऊँ तो ये सब काम भी मेरे ही सर रहें। आदमी न हुआ घनचक्कर हो गया।

सलीम—भाई, यह भी तो सोचो कि आखिर भाभी भी तो कुछ काम करती ही होंगी।

मसूद—क्या काम करती हैं यह ?

बेगम—ऊँ हुहूँ, कुछ भी नहीं। मैं तो बस बैठी रहती हूँ और यह घर चल रहा है इन्हीं के दम से।

नजमा—मालूम होता है कि यहाँ अभी तक यही नहीं तै किया गया कि कौनसा काम किसका है और किस काम का ज़िम्मेदार कौन है।

मसूद—सुभान अल्लाह ! यह भी कोई सरकारी महकमा है कि हर शोबे का एक ज़िम्मेदार हो। यह भी कोई तै करने की बात है ? ज़ाहिर है कि मैं दफ़्तर का ज़िम्मेदार हूँ और यह घर की।

सलीम—ठीक है, बिल्कुल ठीक। तुम दफ़्तर के ज़िम्मेदार हुए और यह घर की। मगर ये बच्चे क्या होंगे फिर ?

मसूद—फिर वही बेवक़ूफ़ी की बातें। बच्चे कोई सरकारी थोड़े हैं। घर में ये भी आ गये।

सलीम—क्या ख़ूब ! घर में आ गये, और जो भाभी यह कहें कि जाओ बावर्चीख़ाना दफ़्तर में चला गया तो तुम क्या कहोगे ?

मसूद—क्या मतलब ? [नजमा हँसती है।]

सलीम—भाई, मतलब यह है कि तुम्हारे ख़याल में तुम्हारा काम यह है कि दफ़्तर जाकर महीने भर का ख़र्च मुहैया करो।

मसूद—और क्या, बस मेरा यही काम है जो मैं करता हूँ।

सलीम—और भाभी का काम यह है कि वह तुमको वक़्त पर खाने को दें। सही वक़्त पर नाश्ता तुमको मिल जाये और यह न हो कि कचहरी से आकर तुमको हांडी-चूल्हा करना पड़े।

मसूद—बेशक, यह हर औरत का फ़र्ज़ होना चाहिये।

सलीम—तो बस तुम्हारा दफ़्तर का और इनका हाँडी-चूल्हे का काम बराबर हो गया। न इनका एहसान तुम पर न तुम्हारा इन पर।

मसूद—तो कौन एहसान जता रहा है? तुम अजीब औंधी-सीधी बातें कर रहे हो।

सलीम—मेरा मतलब यह है कि इसके बाद भी बहुत से काम बाक़ी रह गये—मसलन बच्चों की देखभाल।

मसूद—यह इन्हीं का काम है।

सलीम—घर की सफ़ाई और तरतीब में सलीक़ा?

मसूद—यह भी इन्हीं का काम है, मेरा नहीं।

सलीम—बच्चों की तालीमो-तरबियत?

मसूद—यह······यह अलबत्ता······तालीम मेरा काम है और तरबियत इनका।

सलीम—मेहमानों की ख़ातिर-मदारात?

मसूद—मर्दाने में मेरा काम है और ज़नाने में इनका।

सलीम—सीना-पिरोना, धोबी का हिसाब रखना, दूध वाली का हिसाब-किताब?

बेगम—ऐ कहाँ तक गिनवाओगे? सुबह से उठकर शाम तक दम मारने की फ़ुर्सत नहीं मिलती। अपनी यह गत बनाली है कि न ओढ़ने की फ़िक्र न पहनने की। यह बड़ा तीर मारते हैं कि दफ़्तर में छः घण्टे मेज़-कुर्सी पर बैठकर लिख-पढ़ लेते हैं। यहाँ तो चौबीस घण्टे की यही आफ़त है और फिर भी नाम यह है कि साहब हम कुछ करते ही नहीं।

नजमा—मैंने तो सौ बातों की एक बात कह दी ना कि आप लोगों ने अब तक ज़िम्मेदारियाँ तक़सीम ही नहीं की हैं। अच्छा यह बताइये

कि अगर कभी कोई बच्चा बीमार होता है तो तीमारदारी आप में से किसके ज़िम्मे होती है।

मसूद—एक टाँग घर पर होती है और एक अस्पताल में।

बेगम—रात-रात भर कंधे से लगाये टहला करती हूँ। इनको ख़बर भी नहीं होती।

सलीम—तुम ठीक कहती हो बेगम कि घर का कोई बाक़ायदा निज़ाम ही नहीं है। दोनों में से कोई भी किसी काम का ज़िम्मेदार नहीं है। यही वजह है कि ये लोग इस तरह रहते हैं। हम लोग तो एक मिनट भी इस तरह नहीं रह सकते। यह जो बैठने की जगह है किस क़दर गंदी है! साफ़ कपड़े पहनकर बैठो तो गन्दे हो जायें।

मसूद—हालाँकि अभी मैंने इसको साफ़ किया है। यक़ीन जानो चूहेदान तक तो उठाया है। इस मामले में हमारे यहाँ काम ज़रूर तक़सीम हो गया है यानी मैं सफ़ाई का ज़िम्मेदार हूँ और यह कबाड़-खाना फैलाने की। यक़ीन जानो दो मिनट पहले आकर देखते मालूम होता था कि तख़्त क्या है गड़बड़झाला है।

बेगम—और जो मुँह में आये कह लो। यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारे ही लड़के यह गत बनाये हुए हैं घर की।

मसूद—मेरे लड़कों से आपकी भी तो ग़ालिबन कुछ अज़ीज़दारी है।

सलीम—ओहो, यह बहस तो बिल्कुल बेकार है। लड़के किस घर में नहीं होते। इसके मानी तो ये हुए कि जिस घर में बच्चे हों वह कबाड़ख़ाना ही बना रहे? भई हमारे यहाँ भी तो माशाअल्लाह बच्चे हैं मगर यह बात नहीं होने पाती।

नजमा—दूसरे यह कि लड़कों में भी सलीक़ा और तमीज़ पैदा हो जाती है।

मसूद—साहब, यह अपनी-अपनी क़िस्मत है। यहाँ तो एक-से-एक

नामाक़ूल औलाद मौजूद है। वह देखिये अभी तक पानी से बैठे खेल रहे हैं [डाँटकर] अब हटो भी वहाँ से ! [किटकिटा कर] ये हमारी औलाद थोड़ी ही है आमाल हैं आमाल ! नातिक़ा बन्द है। बाज औक़ात तो जी चाहता है कि कपड़े फाड़कर किसी तरफ़ को निकल जाऊँ।

सलीम—यह क्या बेहूदगी है ? मियाँ ये सब बेढंगेपन के करिश्मे हैं। अगर जरा क़ायदे की ज़िन्दगी बसर करो और अपने घर का एक निज़ाम बना लो तो कुछ दिन में तुम्हारी हालत ही बदल जावे।

मसूद—बदल चुकी हालत अब क़ब्र में बदलेगी।

नजमा—अच्छा आप कुछ दिन हम लोगों के क़ायदे से घर चलाकर देखें कि क्या होता है।

मसूद—यह इनसे कहो जो इस वक़्त बहुत मासूम बनी हुई बैठी सब सुन रही हैं। औरत घर चलाती है न कि मर्द।

सलीम—यह ग़लत है, सिर्फ़ औरत जिम्मेदार नहीं हो सकती।

बेगम—खुदा तुम्हारा भला करे। यह समझते हैं कि सब जिम्मेदारी मेरी ही है।

सलीम—तुम इसको इस तरह समझो मसूद कि सुबह चाय कौन बनाता है तुम्हारे यहाँ ?

मसूद—बनाती तो खैर यही हैं। मगर शायद मेरे दफ़्तर जाने के बाद जब मैं कुछ बचा-खुचा बासी खाकर चला जाता हूँ।

बेगम—खुदा के लिए इतना झूठ तो न बोलो। जब रात गये तक तुम्हारे इन्तेज़ार में जागना पड़ेगा तो सवेरे आँख कैसे खुल सकती है ?

नजमा—रात गये तक इन्तेज़ार क्या, क्या रात को देर तक बाहर रहते हैं मसूद साहब ?

मसूद—दिन भर का थका-हारा अगर रात को दोस्त-अहबाब में ब्रिज खेल लेता हूँ तो वह भी इनको नागवार है, गोया मैं बस इनके लिए हूँ कि कोफ़्त ही में ज़िन्दगी बसर करूँ।

सलीम—यह तो बुरी बात है कि तुम रात को घर के बाहर रहते हो। दरअसल इसकी वजह भी यही है कि तुम अपनी ज़िम्मेदारी महसूस नहीं करते। वर्ना तुम खुद बाहर न जाओ। मुझे देखो मैं कहीं जाता हूँ।

मसूद—तो जनाबे वाला आप ठहरे फ़रिश्ते और मुझमें तो हज़ार ऐब हैं। सुभान अल्लाह आप भी आये वहाँ से जिम्मेदारी लेकर और मुझ ही को क़ुसूरवार ठहराते।

नजमा—ना, ना ना, क़ुसूर की बात नहीं।

सलीम—भाई क़ुसूर तो तुम्हारा इसलिए नहीं है कि दरअसल तुम दोनों अभी तक घरदारी जानते ही नहीं। घरदारी के सिलसिले में तुम दोनों के दरम्यान दरअसल एक ऐसे समझौते की ज़रूरत है जो हम दोनों मियाँ-बीवी के दरम्यान है। इसके बाद अगर समझौते से तुम दोनों फिरोगे तो अलबत्ता क़ुसूर होगा।

मसूद—समझौता, समझौता तो हो ही नहीं सकता मियाँ सलीम। तुम नहीं जानते कि यह किस क़दर बेढंगी हैं।

सलीम—इनके मुताल्लिक़ तो नहीं जानता, मगर क्या तुमसे भी ज्यादा हैं?

बेगम—बस बेढंगापन मेरा यही है कि इनकी लापरवाइयाँ मुझसे देखी नहीं जातीं और जल-जल के रह जाती हूँ।

सलीम—ख़ैर, ख़ैर। दरअसल तुम यह करो, भाभी आप भी सुनिये कि यह घर आप दोनों का है। बच्चे आप दोनों के और खुद आप दोनों भी एक-दूसरे के हैं। अगर आप एक-दूसरे को आराम पहुँचाने की दिल में ठान लें तो यह झगड़ा ही खत्म हो जाय।

मसूद—लाहौल वलाक़ूवत! मियाँ यह मुझको आराम पहुँचा ही नहीं सकतीं तुम कैसी बातें कर रहे हो।

सलीम—सुनो तो सही, आराम पहुँचायेंगी कैसे नहीं। वह नहीं

पहुँचा सकतीं तो तुम पहुँचाओ आराम । फिर देखो कि क्या होता है ।' हम दोनों में भी कुछ दिन लड़ाई रही । यह दिन चढ़े सोकर उठने की आदी थीं और मैं तड़के चाय पीने का ।

नजमा—ख़ैर उन बातों का यहाँ क्या ज़िक्र है ।

सलीम— मैं कोई राज़ नहीं खोल रहा हूँ । मतलब यह कि हम दोनों में समझौता हो गया इन्होंने अलार्म लगाकर सोना शुरू कर दिया और मैंने जरा देर में चाय पीने की आदत डाल ली ।

नजमा—फिर वही, मानेंगे नहीं आप । ख़ुद सोकर उठते ही टूट पड़ते हैं चाय पर । हाथ-मुँह धोने तक......।

सलीम—ख़ैर, ख़ैर । यानी मैं वह बात थोड़ी ही कह रहा हूँ । मेरा तो मतलब यह था कि अब यह आठ बजे नहीं बल्कि सात ही बजे या कुछ बाद में ।

नजमा—हाँ, मैं तो नींद पूरी करके उठती हूँ और आप भूख से बेताब होकर इस तरह उठते हैं कि......।

सलीम—यह क्या लग़वियत है ! मेरा मतलब तो यह है कि यहाँ उठने न उठने का सवाल ही नहीं, चाय मुझको अब जल्दी मिल जाती है । और मैं साढ़े सात बजे ही चाय पी लेता हूँ ।

मसूद—फिर वही, अरे मियाँ तुम अपनी न कहो । तुमको बीवी मिली है फ़रिश्ता जो सात बजे सोकर उठती है और साढ़े सात बजे चाय पिला देती है । अब मैं क्या अपनी बदलवाऊँ किसी से ।

बेगम—ठीक वक़्त पर सोने को मिले तो मैं सात क्या यानी पाँच ही बजे उठ सकती हूँ ।

सलीम—सुनिये तो सही । यहाँ सवाल यह नहीं है बल्कि मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि मैं ख़ुद ही चाय बनाता हूँ ।

मसूद—तुम, यानी तुम अपने हाथ से बनाते हो चाय ?

बेगम—हाँ हाँ, कह तो रहे हैं कि वह ख़ुद बनाते हैं चाय । तुम्हारी

तरह थोड़ी कि बावर्चीख़ाने का रास्ता ही याद न होगा। क्या मजाल जो ज़रा-सा पानी भी गरम कर लें।

मसूद—हाँ तो मैं कब कहता हूँ कि मैं यह काम कर सकता हूँ। मैंने तो मर्दों को यह काम करते न देखा न सुना।

सलीम—क्या ख़ूब, यह भी कोई काम में काम हुआ। अँगीठी में आग सुलगाकर चाय का पानी गरम कर लिया कीजिये, क़िस्सा ख़त्म। मैं तो यह कहता हूँ कि तुमको हर काम के लिए तैयार रहना चाहिये। हाँ, तो पहले मैं चाय बनाकर इनको उठा दिया करता हूँ। और जब तक यह मुँह-हाथ धोकर फ़ारिग़ हों मैं बच्चों को चाय पिलाकर छुट्टी कर लेता हूँ।

बेगम—बच्चों को भी आप ही चाय पिलाते हैं ?

सलीम—क्यों क्या हुआ ? मैं तो बच्चों के हाथ-मुँह तक अपने सामने धुलवाता हूँ।

मसूद—यानी तुम ?

बेगम—और नहीं तो क्या तुम ?

मसूद—हाँ तो क्या बाप होकर बच्चों के हाथ-मुँह धुलवाते हो, और मा के होते हुए ?

सलीम—इसमें मा और बाप का क्या सवाल ह भई, औलाद दोनों की······।

मसूद—मगर तुम मर्द हो भाई।

सलीम—तो क्या हुआ ? क्या मर्दों के लिए बच्चों की देखभाल मना हैं ?

मसूद—ख़ूब साहब, ख़ूब ! तो आप हाथ-मुँह धुलवाते हैं बच्चों का ?

सलीम—उसके बाद उनको चाय पिलाकर छुट्टी कर लेता हूँ, और फिर हम दोनों इत्मिनान से पीते हैं चाय।

मसूद—यहाँ तो यह मार पड़ी रहती है कि बच्चे उठ बैठते हैं तो मुँह कौन धुलाये। और मुँह धुल गया है तो चाय कौन पिलाये। तो गोया बीवी का कोई काम नहीं सिवाय पड़े-पड़े ऐंठने के?

सलीम—नहीं, काम क्यों नहीं। मैं चाय से फ़ारिग़ होकर दफ़्तर के काम में लग जाता हूँ और यह मेरे लिए खाना तैयार करती हैं।

नजमा—और बच्चों का सबक़ भी सुनती हूँ। फिर यह आकर बच्चों को कपड़े पहनाते हैं और मैं सबके लिए खाना लगा देती हूँ।

सलीम—हम सब खाने से फ़ारिग़ होकर अपने-अपने काम में लग जाते हैं। बच्चे स्कूल चले जाते हैं मैं दफ़्तर जाता हूँ और यह घर की सफ़ाई, सीना, पिरोना और दूसरे कामों में मसरूफ़ हो जाती हैं।

मसूद—सुन रहीं है जनाब?

बेगम—मैं क्या सुनूं? तुम भी तो सुनो कि वह मर्द होकर क्या-क्या करते हैं।

सलीम—अब जिस वक़्त मैं दफ़्तर से आता हूँ तो सहन में छोटी-सी मेज़ पर इनको और बच्चों को चाय के लिए अपना मुन्तज़िर पाता हूँ।

मसूद—यह चाय भी तुम ही बनाते हो?

सलीम—नहीं यह ख़ुद ही बनाती हैं। और कुछ हल्का-सा नाश्ता भी तैयार करती हैं। हम सब चाय पीते हैं, उसके बाद बच्चे खेल-कूद में लग जाते हैं। मैं थोड़ी देर आराम कुर्सी पर लेट कर सिगरेट पीता हूँ और ये मेरे क़रीब बैठकर दिलचस्प बातें करती हैं—ऐसी बातें जिनसे मेरे दिमाग़ का बोझ हल्का हो जाता है।

मसूद—यानी बीवी की बातों से आपके दिमाग़ का बोझ हल्का हो जाता है, चे ख़ुश!

सलीम—क्या तुम्हारे नज़दीक न होना चाहिये?

मसूद—दर्दे-सर मोल लेने के लिए तो ख़ैर बीवी से बातें करना ही

पड़ती हैं। लेकिन दिमाग़ का बोझ हल्का करने के लिए आप ही से यह बात सुनी हैं।

नजमा—[हँसकर] कैसे मियाँ-बीवी हैं आप लोग ! हम लोग तो इस तरह से एक दिन भी ज़िन्दा नहीं रह सकते।

मसूद—तो ज़िन्दा ही कब हैं, बस यह कहो कि ज़िन्दों में शुमार ज़रूर है।

सलीम—इसकी वजह यह है कि तुमको ज़िन्दा रहना नहीं आता। हम दोनों अपनी ज़िन्दगी से मुतमइन हैं। हमारा घर जन्नत है। इनको हर वक़्त फ़िक्र रहती है कि मैं कैसे ख़ुश रहूँ।

मसूद—बस यही मेरी क़िस्मत में नहीं।

नजमा—और यह हर वक़्त मुझको ख़ुश देखना चाहते हैं।

बेगम—मेरे ऐसे कहाँ हैं मुक़द्दर !

सलीम—आप दोनों एक-दूसरे को ख़ुश रख सकते हैं। मैं हमेशा अपने कपड़ों की तरफ़ से बेफ़िक्र रहता हूँ। इसलिए कि इन बातों की ख़ुद इनको फ़िक्र रहती है और मुझको हर चीज़ तैयार मिलती है।

मसूद—और एक मैं हूँ।

नजमा—मुझको भी तो आज तक यह कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि पावडर ख़त्म हो गया है या क्रीम और स्नो नहीं हैं।

बेगम—आठ दिन से रूखे बाल लिये फिर रही हूँ। अब ख़ुद ही घर से निकल के जाऊँ तो तेल आये।

सलीम—तौबा, तौबा, तौबा ! यह बड़ी बुरी बात है। मैं तो यह जानता हूँ कि मुझको जो ये साफ़ कपड़े ढंग से पहनने को मिल जाते हैं वह सब इन्हीं का हुस्ने-इन्तेज़ाम है।

नजमा—और मैं यह जानती हूँ कि अगर यह मेरा इतना ख़याल न रखें तो मेरी भी यही हालत हो जो बेगम मसूद तुम्हारी है।

मसूद—यह तो खैर सब कुछ हो सकता है। मैं सब कुछ कर लूंगा। मगर मुझको इनका और अपना दोनों का ख़याल रखना होगा। बग़ैर इसके काम नहीं चल सकता।

बेगम—और अगर मैंने अपना ख़याल रखना छोड़ा तो ख़ुदा जाने मेरी क्या गत बन जायगी।

सलीम—नहीं, नहीं। आप दोनों एक-दूसरे पर भरोसा कीजिये।

मसूद—तो भरोसा मैं कब नहीं करता। मगर भरोसा करने से होता क्या है। अब तुम ही देखो कि मैंने भरोसा किया था कि तुम दोनों आये हो, यह कम-से-कम चाय तो ज़रूर पिलायेंगी मगर वहाँ चाय को छोड़कर पान तक ग़ायब हैं।

बेगम—चाय का मुझे खुद ख़याल आया था मगर क्या मैं सबके सामने यह कहती कि घर में न चाय है न दूध।

मसूद—तो यह किसका बेढंगापन है ?

बेगम—उसी का बढंगापन है जो न चाय लाये न दूध। दोनों चीजें बाज़ार की हैं और मैं घर की बैठने वाली।

सलीम—ख़ैर, आज का ज़िक्र तो छोड़िये। आज तक तो कोई इन्तेज़ाम ही न था मगर अब घर का निज़ाम बना लीजियें।

मसूद—मैं अभी चाय और दूध लाता हूँ। यह कौनसी बात है।

बेगम—तो मुझे करना ही क्या है, मैं भी चाय बना दूँगी। मगर इन लड़कों को क्या किया जाय जो भीगे हुए खड़े हैं।

मसूद—अरे हाँ, लाहौल वला-क़ूवत। साहब यह लड़कों का मामला टेढ़ा है। हम लोग एक-दूसरे के लिए तो समझौता कर सकते हैं मगर इन लड़कों को तो न मैं ठीक कर सकता हूँ और न यह। मुझे छुट्टी नहीं और इनके बस का यह रोग नहीं।

बेगम—तुम जाओ, मैं ठीक किये देती हूँ।

मसूद—तुम क्या ठीक करोगी, मैं ही ठीक करूँगा इनको। मगर दफ़्तर से छुट्टी लेनी पड़ेगी। बहुत कुछ ठीक करना है। सिर्फ़ लड़कों ही को नहीं अपने को भी और आपको भी।

बेगम—लो और सुनो, यह मुझे भी ठीक करेंगे।

सलीम—ठीक है, ठीक है। बहरहाल समझौते की एक सूरत तो पैदा हुई।

[सब हँसते हैं।]

# उलट-फेर

[कुछ बर्तनों के गिरकर टूटने की आवाज, साथ ही बेगम साहबा चीखती हैं।]

पत्नी—अरे क्या तोड़ा, यह क्या चीज गिरी ? सत्यानासी लगा रखी है इन कम्बख्तों ने।

पति—अब बोलता क्यों नहीं रहीम ? यह आखिर क्यों मर गया, बोलता क्यों नहीं ?

पत्नी—और यह नसीबन कहाँ मर रही। दोनों को जैसे साँप सूंघ गया हो।

पति—[गुस्से में] रहीम, ओ रहीम के बच्चे ! [रहीम आता है।]

रहीम—सरकार वह किश्ती हाथ से छूट गई, [नसीबन आती है।]

नसीबन—वह मुई किश्ती का कुण्डा टूटा हुआ तो था ही, अलग हो गया।

पत्नी—तो क्या यह चाय का सेट भी टूट गया ?

पति—अब बोलता क्यों नहीं ? टूट गया ना चाय का सेट ?

नसीबन—सेट पूरा थोड़ी ही टूटा है, बस केतली और दूधदानी।

रहीम—और दो प्यालियाँ।

पत्नी—तो और रह ही क्या गया ? सचमुच तबाही डाल रखी है तुम दोनों मियाँ-बीवी ने।

पति—तबाही तो खैर इस घर को घेरे हुए है। मैं तो चौंधिया के रह गया हूँ कि होने वाला क्या है। मुक़द्दमा जीता-जिताया हर गया। घर से खबर आई है कि चोरी हो गई। नौकरी अलग गड़बड़ हो रही है और यहाँ इन नमक हरामों का यह हाल है।

पत्नी—सचमुच आँखों पर चर्बी छा गई है परेशानी में परेशानी, पैदा करते हैं। क्या खूबसूरत सेट था ! मैंने कलकत्ता से मँगाया था किस अरमान के साथ !

पति—दूर हो जाओ मेरे सामने से नहीं तो मैं अपना सर पीट लूँगा, या तुम दोनों का मुँह नोच लूँगा। दूर हो यहाँ से।

पत्नी—मुए कामचोर निवाला हाजिर और यह नसीबन तो और भी मुई अंधी है।

रहीम—नहीं सरकार, ख़ता तो मेरी है।

नसीबन—मैं होती तो मुझसे भी टूटता। किश्ती का कुण्डा ही अलग था, इसमें मेरी और तुम्हारी ख़ता क्या।

पति—इसमें तुम दोनों की ख़ता नहीं, ख़ता है असल में मेरे मुक़द्दर की। हर तरफ़ से मेरे लिए आजकल तबाही ही तबाही है। और अब तो मैं किसी को मुलाजिम रखने के क़ाबिल ही नहीं हूँ।

पत्नी—अच्छा अब जाओ, ये मनहूस सूरतें निकल हटो यहाँ से।

[रहीम और नसीबन जाते हैं।]

पति—अक़्ल हैरान है कि आख़िर होगा क्या।

पत्नी—तो क्या इस तरह परेशान होने से काम बन जायेगा? जिस तरह वह वक़्त नहीं रहा, यह वक़्त भी न रहेगा। उसे देते कोई देर लगती है? और जो वह लाटरी का टिकट ही निकल आये।

पति—निकल आये तो क्या कहने हैं, दलिद्दर धुल जायें। मगर ऐसी क़िस्मत कहाँ है? सोने को छू लूँ आजकल तो वह भी मिट्टी हो जाये। अब देखो ना जमीलख़ाँ मरहूम को अपना चचा साबित कर ही दिया था।

पत्नी—तो आख़िर फिर यह हुआ क्या कि वह बना-बनाया खेल बिगड़ गया।

पती—भई, वह उनके असली भतीजे जो अर्से से लापता थे, न जाने कहाँ से आ मरे और उन्होंने साबित कर दिया कि मैं शेख़ हूँ और वह पठान थे लिहाज़ा वह मेरे चचा नहीं हो सकते थे।

पत्नी—सचमुच ये मुक़द्दर के खेल हैं, क्या खबर थी कि वह कमबख्त इस तरह आ टपकेंगे।

पति—इस मुक़द्दमे की वजह से दफ़्तर से ग़ैरहाजिरियाँ कीं। ख्याल था कि इतनी बड़ी जायदाद मिल जाएगी तो जिस तनख्वाह का मुलाजिम हूँ उस तनख्वाह के मुलाजिम खुद रखा करूँगा।

पत्नी—घर की सारी पूँजी मुए मुक़द्दमे में अलग फेंकी और न लेना एक न देना दो।

पति—जब परेशानी आती है तो चारों तरफ़ से आती है। अब घर पर चोरी हुई है तो सुना है कि झाड़ू दे गये ये चोर। एक चीज़ नहीं छोड़ी।

पत्नी—वाह री क़िस्मत! समझे थे कि दिन ही फिर जायेंगे मगर यहाँ उल्टी आँतें गले पड़ीं कि जो कुछ था वह भी खो बैठे।

पति—आजकल कुछ नहूसत इस घर पर छाई हुई है। जिसके घर में दो-दो नौकर उसके घर की यह हालत ज़रा देखो। तुम्हें खुदा की क़सम ज़रा देखो वह मेरा नया जूता पड़ा हुआ, हज़ारों मन गर्द होगी उस पर।

पत्नी—कहीं भी नहीं, वह तो रहीम का जूता है। तुम्हारा ही ऐसा जूता लाट साहब भी तो लाए थे।

पति—खूब, खूब! अब यह रियासत छाई है कि पाँच-पाँच रुपये के जूते पहने हैं।

पत्नी—अरे तुम खाली जूतों को कह रहे हो, वह तो हर बात में तुम्हारी नक़ल करता है। तुमने लाटरी का टिकट खरीदा था ना तो बीवी की बालियाँ रखकर आप भी टिकट लाये थे।

पति—लाटरी का टिकट? उसने भी खरीदा है। पागल तो नहीं हो गया है?

पत्नी—ऐ उस टिकट निगोड़े मारे के तो हर वक़्त चर्चे हैं। ज़रा किसी वक्त दोनों मियाँ-बीवी की बातें तो सुनो। कल रहीम नसीबन से कह रहा था कि टिकट निकल आने दे फिर देखना कि कैसी-कैसी बालियाँ तेरे लिए बनवाता हूँ, मरी जाती है ज़रा-सी बालियों के लिए। मैं तो तुझे करनफूल भी बनवा दूँगा और बिजलियाँ भी।

पति—जी और क्या ? लाटरी निकलेगी तो करनफूल और बिजलियाँ ही तो बनेंगी। इस वक़्त लाटरी की ज़रूरत है मुझको। सच कहता हूँ बेगम कि मैं तो एक मिनट भी इस शहर क्या इस मुल्क में न रहूँ। दुनिया की सियाहत करूँ, बड़े-बड़े होटलों में ठहरूँ। कभी हवाई जहाज़ पर उड़ूँ तो कभी समुन्दर के सीने पर चलूँ।

पत्नी—ऐ यह सब मुक़द्दर से होता है। लाटरी निकल आये तो सब से पहले अपनी ख़ानदानी बाप-दादा की जायदाद न छुड़वाई जाय जिसका सूद ही क़ीमत से ज्यादा हो चुका है।

पति—छोड़ो इस ज़िक्र को, मैं तो उस जायदाद को भूल ही जाना चाहता हूँ। मुक़द्दर देखो कि कभी यह मकान अपना था और अब इसका किराया देते हैं। दो-एक मकानों को छोड़कर बाक़ी सब अपने ही थे। [घंटा बजता है।] ओहो दस बज गए। वकील साहब के यहाँ जाकर कचहरी पहुँचना है और दफ़्तर तो आज भी अर्ज़ी जायेगी। यह किधर गया रहीम ? [आवाज़ देता है।] रहीम, रहीम !

[रहीम दौड़ा हुआ आता है।]

रहीम—सरकार !

पति—जूता साफ़ करके दो जल्दी और टोपी पर ब्रुश फेरो। दस बज गये और आप हैं कि पता ही नहीं।

रहीम—सरकार, बाइसिकल साफ़ कर रहा था, ख़ाक-धूल में अटी पड़ी थी।

पति—अच्छा जूता लाओ जल्दी। किसी बात का होश ही नहीं,

है। बाइसिकल साफ़ करने का वक़्त यह था, रात से क्या मौत आ रही थी तुझको ?

रहीम—हुज़ूर मौत तो……।

पति—ख़ामोश ! मैं देख रहा हूँ कि बड़ी रियासत आप पर छाती चली जा रही है। पाँच-पाँच रुपये के जूते ख़रीदे जाते हैं अब तो लाटरी का टिकट लिया गया है बीवी की बालियाँ रखकर। यह दिमाग़ पर जो गर्मी चढ़ी हुई है ना दो मिनट में उतार दूँगा। समझा कि नहीं ? बाल मुँडवाओ आज तुम।

रहीम—जूता हुज़ूर।

पति—यह जूता साफ़ हुआ है। कब से इस पर पालिश नहीं हुई है। बोल, अरे मैं पूछता हूँ कि कब से इस पर पालिश नहीं हुई। नया जूता और घूस की शक्ल बनाकर रख दिया है। उठाता है इसे कि अब मैं उठूँ ? [नसीबन दौड़ती हुई आती है।]

नसीबन—उठा के जल्दी से साफ़ कर दो ना।

पति—आप आई हैं वहाँ से मियाँ की पुश्त-पनाही करने। क्यों री यह तूने टिकट लेने के लिए बालियाँ क्यों दी थीं अपनी और यह पाँच-पाँच रुपए के जूते क्यों पहनता है, क्यों ?

नसीबन—क्या करूँ सरकार।

पति—आज इसका सर मुँडेगा। फैशन तो आपका देखिए उल्टी माँग निकाली जाती है। भूल गये वह दिन कि मक्खियाँ भिनकते हुए आये थे—फ़ाक़ेमस्त, और अब दिमाग़ ख़राब हो गया है ?

पत्नी—नसीबन, खड़ी खड़ी क्या कर रही हो ? लपक के पान-दान उठा दो, एकाध गिलोरी ही बना दूँ।

पति—यह खड़ी हुई देख रही हैं अपने शौहर नामदार की छब कि कैसी बाँकी-तिरछी माँग है। ज़रा आपकी आँखों में सुरमा तो देखिये,

मालूम होता है पूरी बरेली आँखों में ठूँस ली है। बड़े रँगीले होते जाते हैं आप।

पत्नी—ख़ैर तुम जूता-वूता पहनो, कचहरी को देर हो रही है।

पति—नहीं जी लात का आदमी कभी बात से नहीं मानता। आप इन दोनों पर सख्ती रखिये अब। मुलाहज़ा हो यह टोपी साफ़ की है। देख इसे, सूझा यह क्या है?

रहीम—रह गया होगा धब्बा……।

पति—धब्बे का बच्चा! हाथ साफ़ कर पहले अपने। जूते के हाथों से टोपी लेने चला। [नसीबन आती है।]

नसीबन—लाइये मियाँ साफ़ कर दूँ।

पत्नी—तुम पानदान तो इधर दो मुझको।

[नसीबन पानदान रख देती है। पानदान के खोले जाने की आवाज़]

पति—कभी मियाँ-बीवी को साथ-साथ एक घर में नौकर न रखे। ये जो इन दोनों के चोंचले हैं इसी से मैं जलता हूँ। मियाँ को कुछ कहा तो बीवी सीने पर बन गईं, बीवी की कोई बात होती है तो मियाँ तरफ़दारी को मौजूद। ख़बरदार जो तुम एक-दूसरे की बातों में कभी बोले।

पत्नी—हाँ, यह तो हुआ ही करता है। रोज़ यही देखती हूँ मैं तो।

पति—बस इसका इलाज यह है कि ये दोनों आपस में पर्दा करें। या बस एक को रखो और एक का हिसाब साफ़ कर दो।

पत्नी—अच्छा ख़ैर, लो पान लो तुम और जाओ देर हो रही है।

पति—कचहरी से लौट कर आऊँ तो कमरा साफ़ मिले मुझको, कान खोल कर सुन लो।

[पति चला जाता है।]

## ऐलान

जफ़र यानी मियाँ और जमीला यानी बीवी दोनों की यह राय ठीक थी कि तमाम बातें क़िस्मत से ही हुआ करती हैं। उन का जीता-जिताया मुकद्दमा मुक़द्दर ने हरा दिया। मुकद्दमा भी गया और अपने साथ नौकरी को भी ले गया। घर की चोरी ने रही-सही पूँजी भी साफ़ कर दी। मगर जमीला का यह भी कहना ठीक था कि उसे देते देर नहीं लगती चुनांचे रहीम—पाँच रुपये महीना और का नौकर, रहीम, जिसने बीवी की बालियाँ बेचकर लाटरी का टिकट ख़रीदा था, लाटरी मिल जाने से आज लखपति है। पढ़ा न लिखा, जिसे जूता साफ़ करने की तमीज़ न थी आज बड़ा आदमी है और ख़ुद उसने हक्क़े-नमकख़्वारी अदा करने के लिए कहिए या परवरिश की नज़र से ज़फ़र को अपना मुख़्तार बना रखा है। मगर इस उलट-फेर ने नक़्शा ही बदल दिया है। वह अब सरदार अब्दुर्रहीम ख़ाँ है। और ज़फ़र ने ख़ुद अपने लिए प्रायवेट सेक्रेटरी का ओहदा पसन्द किया है।

[हुक्क़ा पीते हुए सरदार अब्दुर्रहीम ख़ाँ आवाज़ देते हैं।]

रहीम—अरे कोई है ! सब मर गये, सब को साँप सूँघ गया। मैंने कहा, सिकत्तर साहब, ऐजी सिकत्तर साहब हो तो !

पति—मैं हाज़िर हूँ, कमिश्नर साहब के ख़त का जवाब भिजवा रहा था।

रहीम—कौन ख़त, और यह कमिश्नर कौन ? हमें भी तो कुछ बताया करो साहब।

पति—आपने जो अस्पताल के लिए चन्दा भिजवाया था, उसका उन्होंने शुक्रिया अदा किया था कमिश्नर साहब ने अब उनके ख़त का जवाब आपकी तरफ़ से दिया जा रहा है।

रहीम—वह तो ठीक है मगर, ज़रा यह तो देखो हुक़्क़े पर आग

तक नहीं है। इतने नौकर-चाकर और ठण्डा हुक्क़ा पी रहा हूँ। भई, तुम्हारे यहाँ तो दो ही नौकर थे एक मैं और एक वह, क्या नाम रखा है घरवाली का तुमने ?

पति – जी, वह बेगम नसीबआरा।

रहीम—हाँ तो अब बोलो, कभी ऐसी बात हुई कि ठण्डा हुक्क़ा तुमको मिला हो और अगर कभी ऐसा होता तो तुम कैसा बकते हम दोनों पर। बाल मुँडवा देते, मियाँ-बीबी में पर्दा करवा देते। और जाने क्या-क्या करते।

पति—जी वह मैं अभी कहता हूँ किसी से कि यहीं हाजिर रहे।

रहीम—हाजिर-वाजिर तो हम जानते नहीं, हमारा काम ठीक न होगा तो हम सिकत्तर साहब, गर्दन बस तुम्हारी दबायेंगे। यह समझलो।

पति—मगर अब उम्मीद है कि इसका मौक़ा ही न आयेगा। [आवाज देता है।] देखो चमन, ग़फ़ूर, करीम चलो, इधर आओ।

[तीनों आदमियों के आने की चाप]

पति—तुम तीनों की बारी-बारी ड्यूटी गोल कमरे के बरामदे में रहेगी। जिस वक़्त घण्टी बजे फ़ौरन हाजिर हो।

रहीम—कौन सी घण्टी ? अच्छा यह घण्टी ! [घण्टी बजा देता है।] और यह भी सिकत्तर साहब कह दो कि ये लोग हमारे साथ ताश खेला करेंगे।

पति—अच्छा तुम लोग जाओ। [आदमी चले जाते हैं।]

रहीम—यह क्या, वह ताश वाली कही भी नहीं बात।

पति—मैंने जानकर नहीं कही। उसके मुताल्लिक़ मुझे अर्ज यह करना है कि आपके लिए यह मुनासिब नहीं है कि आप इन नौकरों के साथ ताश खेलें। आपको ख़ुदा ने दौलत दी है। आपके लिए मैं कोशिश कर रहा हूँ कि आपका मरतबा और इज्जत भी बढ़े।

रहीम—अरे यार कहाँ से इज्जत और मरतबा लेके चला है। दिन भर बैठे-बैठे उँघाई आने लगती है।

पति—गुस्ताखी माफ़, मैं तो कल से इस फ़िक्र में था कि मौक़ा मिले तो कुछ अर्ज करूँ। कल मोटर पर जब हवाखोरी के लिए बेगम साहबा तशरीफ़ ले गई हैं तो बाजार में मोटर रुकवा कर चाट नोश फ़रमाई। मेरी बीवी ने दबी जबान से मना भी किया…

रहीम—हाँ वह नहीं मानतीं और क्यों मानतीं ? बहुत मान चुके हम दोनों तुम दोनों की बातें। औंधी-सौंधी हर बात मानी। तुम्हारे गुर्रे-डब्बे सहे। सिकत्तर साहब, अब यह नहीं हो सकता। सरदार अब्दुर्रहीम खाँ की बेगम और सरदार अब्दुर्रहीम खाँ अब तुम्हारे नौकर नहीं हैं। समझे कि नहीं ?

[दरवाजा खुलता है और बेगम नसीब आरा आती हैं।]

नसीबन—क्या बात है ? मेरा नाम सिकत्तर साहब ने कैसे लिया था ?

रहीम—कहते हैं कि बेगम साहब ने मोटर पर बैठकर काबुली कचालू बजार में क्यों खाये थे ?

नसीबन—यह जमीला बुआ ने आकर लगाई-बुझाई की होगी। देखो मैंने कह दिया है कि यह लगाई-बुझाई मुझे पसन्द नहीं। समझे कि नहीं ? मुझे देखो कि जमीला बुआ, जमीला बुआ करते हुए जबान सूखती है और यह इत्ती सी बात आकर लगायें, वाह ! ऐ काबुली कचालू खाये तो किसी का क्या किया। अल्ला ने पैसा दिया है, खाते हैं जो जलता है जले।

[पत्नी आती है।]

रहीम—क्यों जी जमीला बुआ यह क्या बात है ? तुम दोनों मियाँ-बीवी ने तो दौलत जब मुझे मिली है यह कहा था कि हम अपना जमाला

भूलकर रहेंगे। मगर साँप जल गया, नहीं जी रस्सी जल गई और बल नहीं गये।

पत्नी—मैं समझी नहीं कि आप क्या फ़रमाते हैं?

पति—वही कल की चाट का जिक्र था।

रहीम—देखो सिकत्तर साहब, तुम नहीं बोल सकते। यह बात जैसी तुमको बुरी लगती थी, मुझको भी बुरी लगती है कि बीवी की बात में मियाँ बोले।

पत्नी—मैं अर्ज़ करूँ, मैंने बेगम साहबा से यही कहा था कि ख़ुदा ने जो रुतबा आपको दिया है, उसको देखते हुए यह मुनासिब नहीं कि आप सरे बाज़ार चाट नोश फ़र्मायें।

नसीबन—मगर इत्ती सी बात तुमने मियाँ से अपने क्यों लगाई? मैं खाऊँगी चाट और इस जिद में रोज खाऊँगी। वाह!

रहीम—ठीक तो कहती हैं बेगम हमारी। अब कोई हम तुम्हारा दिया खाते हैं या तुम्हारे ताबेदार हैं? आख़िर तुमने समझा क्या है?

पति—मगर मैं इस वक़्त इस बात को साफ़ कर लेना चाहता हूँ कि···

रहीम—कुछ साफ-वाफ नहीं होगा। यह काम मैं तुम से नहीं ले सकता इसीलिए और नौकर-चाकर हैं। मैं ऐसा नमकहराम थोड़ी हूँ कि जिसका नमक खाया है उससे सफाई का काम लूँ।

पति—यह तो आपकी नवाज़िश है कि आप यह ख़याल फ़रमाते हैं मगर मेरा मतलब यह था कि मैं एक बात तै कर लेना चाहता हूँ। आपने ख़ुद पहले ही दिन यह कह दिया था कि बड़े आदमियों के ढंग तुम मुझको बताना। इसलिए हम दोनों इस तरह बात-बात पर टोकते हैं। अगर आप मना करदें तो हम ख़ामोश हो जायेंगे।

नसीबन—यह तो ठीक है, मगर अब क्या तुम लोग हलक़ के दर-बान बनके बैठोगे ?

रहीम—कहने दो सिकत्तर साहब को बात यह ठीक कह रहे हैं कुछ···

पति—मेरा मतलब यह है कि मुलाज़िम को बाजार भेजकर आप जितनी चाहें चाट मँगालें, कोठी पर चाट वाले को बुलालें, आपको ताश खेलने का शौक़ है तो मैं कुछ मुअज़्ज़िज़ लोगों को बुलाये देता हूँ। मगर आपको अपनी बड़ाई का ख़याल करना ही पड़ेगा।

रहीम—तो क्या हम ख़याल नहीं करते। गद्देदार कुर्सी पर दिन भर बैठे रहते हैं। पतंग लूटे हुए महीनों हो गये, मगर एक दफा भी लंगर नहीं चलाया। डिप्टी साहब का नौकर अच्छन कई दफा आया मगर तुमने रोक दिया तो उससे भी नहीं मिले। क्या अपना यार था जब उससे रुपया-धेली कर्ज माँगा, उसने बराबर दिया। अभी उसकी अठन्नी मुझ पर बाकी भी है।

पति—अठन्नी की जगह मैं उसे सौ रुपये का नोट भिजवाये देता हूँ। मगर अब वह आपका दोस्त कैसे हो सकता है ? अब तो डिप्टी साहब से आपकी दोस्ती हो सकती है।

रहीम—ना बाबा, डिप्टी साहब से मेरा दम निकलता है। एक बार मैं और अच्छन पत्ते खेल रहे थे, यही माँग पत्ता, तो भाई वह दौड़े हण्टर लेके। वह दिन और आज का दिन मैंने तो सामना किया नहीं उनका।

नसीबन—कल डिप्टी साहब की बीवी ने मुझे भी बुलाया था, मगर मैं तो गई नहीं। इन जमीला बुआ के साथ एक दफा गई थी तो झूठा खाना मिला था मुझे। मैं नहीं जाती ऐसी के यहाँ।

पत्नी—आपकी भी क्या बातें है ! वह बात जब की थी और अब ख़ुदा ने आपको लखपति बना दिया है।

पति—मेरे दिल में यह कई मरतबा ख़याल आया कि बेगम साह

को यह कुछ पढ़ाना शुरू कर दें। और इधर आप भी कुछ मेहनत करें। अब आपका लिख-पढ़ जाना जितना जरूरी है उतनी कोई बात जरूरी नहीं।

रहीम—हाँ यह बात मानी। क्यों बेगम, अरे लिख-पढ़ जायेंगे तो लिखना-पढ़ना काम ही आयेगा कभी-न-कभी। अब जो कुछ यह खतों में लिखते हैं उस पर वही लिख देता हूँ जो उस दिन इन्होंने दिन भर लिखना सिखाया है।

पति—हाँ, अब आप ही मुलाहज़ा फ़र्माइये कि दस्तखत करना आपको किस क़दर मुसीबत से सिखाया है। इतने बड़े आदमी के लिए इस क़दर अनपढ़ होना बहुत बुरा है।

नसीबन—अरे तो क्या इनको किसी की नौकरी करना है। और खैर वह तो मैं क्या करूँगी लिख-पढ़ कर।

पत्नी—परसों आप ही से जो ठकुरानी साहबा ने पूछा मिजाज शरीफ़ तो आप लगीं मेरा मुँह देखने।

पति—यही नहीं, गर्ल्स स्कूल से आज ही खत आया है कि बेगम साहबा उनके सालाना जलसे की सदारत करें।

रहीम—हाँजी लिखना-पढ़ना बहुत अच्छी बात है। तुम तो सिकत्तर साहब किताब मँगालो हम दोनों के लिए। मैं भी पढ़ूँ और यह भी। अरे हाँ, इतने बड़े सरदार अब्दुर्रहीम खाँ और इतनी बड़ी बेगम क्या नाम रखा है इनका ?

पति—बेगम नसीब आरा।

रहीम—तो इतनी बड़ी बेगम नसीब आरा और जानते नहीं अलिफ़ के नाम लट्ठ।

पति—इसीलिए मैंने अर्ज किया कुछ दिनों की मेहनत है, उसके बाद न मुझे सर खपाना पड़ेगा, न आप बात-बात पर मुँह देखेंगे।

रहीम—अच्छा चलोजी दो सौ रुपये तो सिकत्तर होने की तन-

तनख्वाह थी ही सौ रुपये इस मुल्लागीरी के और इन उस्तानी के भी सौ रुपये।

पति—यह सब परवरिश है।

रहीम—परवरिश क्या सिकत्तर साहब, हम दोनों ने भी तो आपका नमक खाया है।

नसीबन—अच्छा मैंने कहा सुनते हो जी? मुझे तुमसे कुछ कहना है।

पति—तो अब हम इजाजत चाहते हैं।

रहीम—अच्छा, मगर भाई सिकत्तर साहब, जरा इस हुक़्क़े-वुक्क़े की फ़िक्र रखा करो। अब देखो ना यह जल गया मैं बैठा हूँ।

पति—तो घण्टी बजाइये ना। लीजिये मैं ख़िदमतगार को बुलाये देता हूँ। [घण्टी बजाता है, साथ ही एक आदमी आता है] जाओ, पेचवान ताज़ा करके लगाओ। [आदमी चला जाता है।] तो मैं इजाज़त चाहता हूँ, आदाब अर्ज़!

रहीम—सलाम भाई, सलाम। [मियाँ और बीवी दोनों कमरे के बाहर जाते हैं। क़दमों की चाप दूर तक जाती है। उसकी बीवी कहती है।]

पत्नी—सचमुच बेइज्जती की हद है।

पति—[ठण्डी साँस भर कर] कायापलट। जो कुछ भी मुक़द्दर दिखाये।

पत्नी—इससे तो फ़ाक़े करना अच्छा था।

पति—तुम तो हो पागल। यह तो क़ुदरत ने एक तमाशा दिखाया है। मुझे तो गुस्सा नहीं बल्कि हँसी आती है इन दोनों की बातों पर। अब कल से यह रद है कि कोट-पतलून पहनेंगे।

पत्नी—मगर मैं तो यही चाहती हूँ कि जो कुछ क़िस्मत में लिखा

है वह होगा, मगर जिनसे हाथ जुड़वाये हैं उनके आगे हाथ नहीं जोड़े जाते।

पति—तुम कहती ठीक हो तुम से पहले बार-बार मेरा भी यही इरादा हुआ। मगर दो सौ रुपये तनख्वाह अब सौ तुम्हारे और तीन सौ मेरे कर दिये हैं। गोया चार सौ रुपये महीना कौन देगा मुझे ? यह तनख्वाह और फिर यह सियाह-सफेद का मालिक मैं हूँ। अलबत्ता दिल पर ज़रा जब्त करना पड़ता है। अब तुम ही समझो रहीम में अक्ल कहाँ से आ सकती है और वह लखपति होकर भी असलियत को कैसे भूल सकता है ?

पत्नी—इस मोटी नसीबन को तो देखो। सचमुच रानी बन गई है रानी।

पति—तो इसमें कोई शक भी क्या ! क़िस्मत ने उसे वाक़ई रानी बना दिया है। उसे रानी बनने का हक़ है।

पत्नी—आज सवेरे से फूली हुई हैं। कहने लगीं कि मेरे सर की जुएँ देख दो। मैंने टोका कि यह बात फिर आपने छोटे लोगों की-सी की। बस ख़फ़ा हो गईं।

[रहीम की आवाज। क़दमों की चाप, रहीम खुद ही पुकारता हुआ आता है।]

रहीम—किधर गये, अरे सिकत्तर साहब कहाँ हैं ?

पति—हाज़िर हूँ मैं।

रहीम—अच्छा यह बताइये कि यह क्या बात कि हमारी बेगम ने इन जमीला बुआ से कहा, ज़रा हमारा सर झाड़ दो। तो इन्होंने कहा कि छोटे आदमियों की बात है। वह किससे कहतीं ?

पति—जी हाँ, यह है तो छोटे आदमियों की बात ज़रूर। बड़े आदमियों की बेगमों को सर की जुएँ नहीं दिखलाना चाहिये।

रहीम—चाहे जुएँ पड़ी रहें, क्यों जी ? यह क्या कहा तुमने ?

पति—यह कहा मैंने कि या तो आप दोनों हम दोनों को मना कर दें कि आपके मामलात में न बोलें। या हम लोग जो मुनासिब समझेंगे आपकी भलाई के लिए आपसे कहेंगे। उसको सुनिये और वैसा ही कीजिये।

रहीम—भाई मियाँ, नौकरी तो इस तरह नहीं होती कि जो तुम कहो वह किया जाये। नौकरी होती है उस तरह जिस तरह हमने तुम्हारी नौकरी की है कि दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना। तुम्हारी दोनों की हर बात सुनी, गालियाँ खाईं और मियाँ तुम मारने तक को दौड़े हो मुझ पर।

पति—मगर मैं या मेरी बीवी आप ही दोनों की भलाई के लिए हर बात बताते हैं कि दुनिया आप पर हँसे नहीं।

नसीबन—अजी बस रहने भी दो। मुझसे तो पैर तक दबवाये हैं आधी-आधी रात तक। चार रुपल्ली और पाव भर अनाज का नौकर रखा था और दिन भर कोल्हू के बैल की तरह हम दोनों जुते रहते थे। फिर गालियाँ और कोसने अलग खाते थे।

पति—तो क्या आपका मतलब यह है कि वैसा ही सलूक आप दोनों हम दोनों के साथ चाहती हैं? अगर यह मतलब है तो यह लीजिये ये रहीं तिजोरी की कुंजियाँ! [कुंजियाँ फेंक देता है।] आप अपने घर खुश, हम अपने घर खुश।

रहीम—अरे, अरे, अरे सिकत्तर साहब! मियाँ हुजूर सिकत्तर साहब, जरा ग़म खाओ।

पत्नी—जी बस ग़म खाना हो चुका। आप दोनों को लुटेरों की तरह लूटते और ज्यों-का-त्यों बनाये रखते तो आप खुश रह सकते थे।

[चली जाती है।]

नसीबन—तो चलीं कहाँ? सुनो तो, बेगम साहब। ऐ है!

पति—ठहरो जी [illegible] इनका सारा हिसाब

दूँ और इनको बतादूँ कि एक पाई भी इधर की उधर नहीं हुई है। उसके बाद ये जानें और इनका काम।

नसीबन—आप तो बेकार के लिए बिगड़ गये मियाँ, वह सिकत्तर साहब।

रहीम—चुप, वह तो सब तेरी ही वजह से हुआ है। उन्होंने कभी हमको निकाला नहीं और आज हम उनको जाने दें।

पति—खैर यह देखिये, २६ अक्तूबर को रुपया आया था। यह आमद दर्ज है, और·········।

रहीम—मैं कुछ नहीं देखता। जिन्दगी भर क़दमों पर गिर चुका हूँ। आज फिर कदमों पर गिरता हूँ।

पति—अरे, अरे, अरे यह आप क्या कर रहे है?

रहीम—नहीं, आपको जाने नहीं देंगे। और उसको भी माफ़ कर दीजिये, बेवक़ूफ़ है। मैं पैर छोड़ूँगा नहीं जब तक············।

पति—ठहरिये तो बात तो सुनिये मेरी। लाहौल वला क़ूवत! अरे साहब············।

रहीम—कुछ नहीं बस हँस दीजिये मियाँ, हँस दीजिये। वह क्या नाम कि सिकत्तर साहब।

नसीबन—मैं जब नौकरी छोड़के जा रही थी तो आपने गले से लगाया था। अब मैं नहीं जाने देती। मेरी बीबी, वह मेरी जमीला बुआ।

पत्नी—अच्छा छोड़िये तो सही।

पति—खुदा के लिए आप उठिये। ~~अच्छा साहब नहीं~~ जाते, नहीं जाते, नहीं जाते। खुदा के लिए उठिये।

रहीम—हाँ यह बात!

[सब हँसते हैं]